इमाम हुसैन (अ) कौन थे ?
और करबला क्या है ?

सैय्यद शाहिद हुसैन (मीसम नोनहरवी)

इमाम हुसैन कौन थे?

और

करबला क्या है?

लेखक

सैय्यद शाहिद हुसैन 'मीसम नोनहरवी'

प्रकाशक

इमामिया यूथ आर्गेनाइज़ेशन

17 जीत किसकी हुई? 38

18 इमाम हुसैन ने ऐसा क्या किया था जो सदियों बाद भी उनका नाम लिया जाता है? 40

19 इमाम हुसैन ही यज़ीद के ख़िलाफ़ क्यों खड़े हुए? 41

20 शिया मुसलमान 1400 साल बाद इमाम हुसैन का ग़म क्यों मनाते हैं? 43

21 शिया मुसलमान इमाम हुसैन की याद रोकर क्यों मनाते हैं? 45

22 क्या इमाम हुसैन को शियों ने क़त्ल किया था? 46

23 इमाम हुसैन के बारे में हज़रत मुहम्मद की कही कुछ बातें 48

24 इमाम हुसैन की कही कुछ बातें 49

25 इमाम हुसैन के बारे में दुनिया की महान हस्तियों ने क्या कहा? 51

26 इमाम हुसैन की ज़िन्दगी से मिलने वाली सीख 54

27 इमाम हुसैन की शान में कहे ग़ैर मुस्लिम शायरों के कुछ शेर 55

अपनी बात

आज इस्लाम के लिये सबसे बड़ी मुश्किल ये है कि उसे कुछ ऐसे लोगों ने बंधक बना लिया है जो अपने चेहरे पर इस्लाम की नक़ाब डाले हैं मगर हक़ीक़त में इस्लाम के दुश्मन हैं। ये लोग अपना एक ख़ास मक़सद रखते हैं और उस मक़सद तक पहुँचने के लिये इस्लाम का दुरुपयोग कर रहे हैं। ये अपनी हर जुनूनी, जल्लादी और ऊल–जुलूल हरकत को इस्लाम का नाम दे देते हैं। यही वजह है कि जैसे–जैसे ज़माना गुज़रता जा रहा है लोगों के दिमाग़ों में इस्लाम की छवि बिगड़ती जा रही है और उनके दिलों में इस्लाम के लिये नफ़रत बढ़ती जा रही हैं।

कुछ ऐसा ही हुआ था आज से 1400 साल पहले जब यज़ीद नामी जुआरी, शराबी, और ख़ूँख़ार इन्सान मुसलमानों का हाकिम बन बैठा था। उसने ख़ुद को हज़रत मुहम्मद का उत्तराधिकारी और मुसलमानों का लीडर कहना शुरू कर दिया था। उस वक़्त इमाम हुसैन, जो हज़रत मुहम्मद से नवासे और हज़रत अली के बेटे थे, यज़ीद के ख़िलाफ़ उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा कि सब कुछ बर्दाश्त है मगर ये नहीं बर्दाश्त कि यज़ीद जैसा ज़ालिम इन्सान, मुसलमानों का लीडर कहा जाए।

अपनी इसी मुख़ालिफ़त की वजह से इमाम हुसैन को हज़ारों मुसीबतें झेलनी पड़ी जैसे कि उन्हें ख़ुद को और अपने घर वालों को करबला के तपते रेगिस्तान में भूखा–प्यासा कुरबान करना पड़ा। मगर उन्होंने हमेशा के लिये दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया। उन्होंने हक़ीक़ी इस्लाम को फ़रेबी इस्लाम से जुदा कर दिया। उन्होंने आने वाली नस्लों को ऐसी निगाहें दे दीं जिसकी बिना पर आज भी जैसे ही लोगों के सामने नक़ली इस्लाम पेश किया जाता है वो फ़ौरन ताड़ जाती हैं कि ये असली नहीं नक़ली है।

क्योंकि असली इस्लाम तो वही है जिसे इमाम हुसैन के नाना हज़रत मुहम्मद इस दुनिया में लेकर आए थे। वही इस्लाम जिसमें

प्यार–मुहब्बत, मेल–मिलाप और भाईचारा है। वही इस्लाम जिसकी बुनियाद नेकी, ईमानदारी और अद्ल व इन्साफ़ पर रखी गई हैं।

इन बातों को सामने रखकर आप से गुज़ारिश है कि जब भी आपके सामने इस्लाम के किसी रूप को पेश किया जाए तो बस ये देखिये कि उसमें शान्ति, एकता और भाईचारे का संदेश है या नहीं। अगर ये चीज़ें उसमें पाई जाएं तो समझ लीजिये वो हक़ीक़ी और असली इस्लाम है वरना वो नक़ली और झूठा इस्लाम होगा।

कुल मिलाकर कहा जाए तो इस्लाम के दो रूप हैं : हुसैनी इस्लाम और यज़ीदी इस्लाम। हुसैनी इस्लाम यानी आज़ाद इस्लाम जबकि यज़ीदी इस्लाम यानी बंधक इस्लाम।

सैय्यद शाहिद हुसैन 'मीसम नोनहरवी'

इमाम हुसैन कौन थे?

इमाम हुसैन एक नेक, सच्चे और रहमदिल इन्सान थे। वो अल्लाह को मानने वाले इन्सानियत के सच्चे रहनुमा थे। वो इस्लाम का हक़ीक़ी चेहरा, अद्ल व इन्साफ़ का तराज़ू, हक़ की पहचान और अम्न व शान्ति के दूत थे। वो जुल्म के मुँह पर एक तमाचा और बुराई के लिये मौत का पैग़ाम थे।

इमाम हुसैन का जन्म आज से लगभग 1400 साल पहले मदीना नामी शहर में हुआ था। वो अल्लाह के आख़िरी पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद(स.) के नवासे और दुनिया के सबसे बहादुर इन्सान हज़रत अली(अ.) के बेटे थे। इमाम हुसैन की माँ का नाम फ़ातिमा और उनके बड़े भाई का नाम हसन था।

इमाम हुसैन की पैदाइश और उनका नाम रखा जाना :

इमाम हुसैन जब पैदा हुए तो उनके नाना हज़रत मुहम्मद(स.) उन्हें देखने के लिये आए। जब हज़रत मुहम्मद(स.) ने नौ–मौलूद (नवजात) बच्चे को गोद में लिया तो अल्लाह ने जिबरील नामी फ़रिश्ते को भेजकर हज़रत मुहम्मद(स.) से कहलवाया कि वो बच्चे का नाम 'हुसैन' रखें।

'हुसैन' शब्द 'हुस्न' से बना है जिसका मतलब है नेकी और ख़ूबसूरती। और जैसा कि उनका नाम रखा गया था, इमाम हुसैन ठीक उसी तरह बेहद नेक और बहुत ख़ूबसूरत इन्सान थे। जो भी उन्हें देखता था वो उनका आशिक़ बन जाता था। और ऐसा क्यों न होता जबकि अल्लाह ने उनका नाम 'हुसैन' रखा था। वो दुनिया के पहले इन्सान थे जिसका नाम 'हुसैन' रखा गया था।

उनके नाम के साथ 'इमाम' शब्द का इस्तेमाल इसलिये

किया जाता है क्योंकि इमाम का मतलब सरदार, पेशवा और लीडर होता है। और इसमें कोई शक नहीं कि इमाम हुसैन दुनिया के सबसे बड़े लीडर थे क्योंकि उन्हें अपना ख़ून देकर इन्सानियत को बचाया था।

नाना हज़रत मुहम्मद(स.) का हुसैन से प्यार :

इमाम हुसैन के नाना हज़रत मुहम्मद, उस इल्म की बदौलत जो अल्लाह ने उन्हें दिया था, आने वाले ज़माने को अच्छी तरह देख रहे थे। उन्हें मालूम था कि आगे चलकर उनका नवासा हुसैन किस तरह उनके मज़हब को बचाएगा और किस तरह सच्चाई का सन्देश दुनिया वालों को देगा। इसीलिये हज़रत मुहम्मद ने एक नही, कई बार कहा था, "हुसैन मुझसे है और मैं हुसैन से"।

लिखा है कि जब इमाम हुसैन का बचपन था तो अक्सर हज़रत मुहम्मद उन्हें अपने कन्धे पर बिठाकर मदीने की गलियों में निकलते और जब लोग उनसे इसकी वजह पूछते थे तो हज़रत मुहम्मद कहते थे, "ये हुसैन है, इसे पहचान लो। ख़ुदा की क़सम! ये हुसैन जन्नत में होगा और (न सिर्फ़ ये बल्कि) इसे चाहने वाले लोग भी जन्नत में होंगे।"

किताबों में ये भी लिखा है कि जब हज़रत मुहम्मद के दोनों नवासे (हसन व हुसैन) छोटे थे तो वो उनके साथ खेलते थे। कभी–कभी तो वो उन्हें अपनी पीठ पर बिठाकर उनके लिये सवारी बन जाते थे। एक दिन जब किसी चाहने वाले ने देखा कि हज़रत मुहम्मद अपने दोनों नवासों के लिये ऊँट बने हुए हैं तो कहाः कितनी अच्छी सवारी है! इतना सुनते ही हज़रत मुहम्मद ने उससे कहाः और ये भी तो कहो कि कितने अच्छे सवार हैं!

इसके अलावा भी हज़रत मुहम्मद ने अपने नवासों के बारे में कई बातें कही थीं। मसलन "मेरे दोनों नवासे (मेरे बाद मेरी क़ौम के) सरदार (लीडर) होंगे" या "मेरे ये दोनों नवासे जन्नत के जवानों के सरदार होंगे"। हज़रत मुहम्मद ने इमाम हुसैन के बारे

में ये भी कहा था कि "यक़ीनन हुसैन रहनुमाई का चिराग़ और नजात देने वाली कश्ती (नाव) है"।

हज़रत मुहम्मद ने ये बातें इसलिये कही थीं क्योंकि वो जानते थे कि आने वाले ज़माने में सच और झूठ को इस तरह मिला दिया जाएगा कि लोगों के लिये असली और नक़ली इस्लाम का पहचानना मुश्किल हो जाएगा। इसलिये वो अपने चाहने वालों को होशियार कर देना चाहते थे कि जब कुछ दुश्मन, इस्लाम का मुखौटा लगाकर इस्लाम में शामिल हो जाएं और इस्लाम को बदनाम करना चाहें तो तुम हुसैन के साथ रहना क्योंकि वही तुम्हें सच्चा रास्ता दिखाएंगे और तुम्हारा बेड़ा पार लगाएंगे।

इमाम हुसैन की नानी जनाब ख़दीजा :

इमाम हुसैन की नानी का नाम 'ख़दीजा' था। उनकी हज़रत मुहम्मद से शादी तब हुई थी जब हज़रत मुहम्मद की उम्र 25 साल थी। उस वक़्त तक हज़रत मुहम्मद ने खुले तौर पर लोगों को इस्लाम की तरफ़ बुलाना शुरू नहीं किया था।

लिखा है कि जनाबे ख़दीजा की गिनती मक्का शहर के सबसे मालदार लोगों में होती थी। वो रोज़ाना इस्तेमाल होने वाली चीज़ों की तिजारत (व्यापार) करती थीं। उनके तिजारती क़ाफ़िले मक्का से शाम, यमन और दूसरे शहरों तक सामान ले जाया और लाया करते थे।

जब हज़रत मुहम्मद से उनकी शादी हुई तो उन्होंने अपनी आरामदेह और शान–शौकत वाली ज़िन्दगी छोड़कर सादा और सख़्तियों भरी ज़िन्दगी अपना ली। उन्होंने अपना सारा माल–दौलत भी हज़रत मुहम्मद को दे दिया ताकि वो उससे मक्का शहर के ग़रीबों और बेसहारा लोगों की मदद कर सकें। जब हज़रत मुहम्मद ने खुले तौर पर लोगों को इस्लाम की तरफ़ बुलाना शुरू किया तो मक्के के बहुत से लोग ख़ास तौर पर पैसे वाले और ताक़तवर लोग उनके दुश्मन हो गये। यहाँ तक कि

उन्होंने हज़रत मुहम्मद और उनके साथियों को एक पहाड़ की गोद में तीन साल के लिये क़ैद कर दिया। मगर इस मुश्किल घड़ी में भी जनाबे ख़दीजा उनके साथ रहीं हालाँकि उन्हें बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ीं और कई–कई दिन भूखा रहना पड़ा।

इमाम हुसैन के वालिद (बाप) हज़रत अली :

हज़रत अली को आज दुनिया में कौन नहीं जानता?! यूँ तो उनमें लाखों और करोड़ों ख़ूबियाँ थीं मगर आमतौर पर दुनिया वाले उन्हें दो चीज़ों की वजह से ज़्यादा जानते हैं। एक उनका इल्म और दूसरे उनकी बहादुरी। उनका इल्म ऐसा था कि वो मुश्किल से मुश्किल सवाल का हल, पल भर में बयान कर देते थे। वो अक्सर लोगों के बीच कहते थे कि "मुझसे जो पूछना चाहो पूछ लो। क्योंकि मुझे ज़मीन के रास्तों से ज़्यादा आसमान के रास्तों का इल्म है"।

हज़रत अली की बहादुरी का हाल ये था कि बड़े से बड़ा सूरमा उनके सामने आते डरता था। उनकी तलवार उठती थी तो ज़ालिमों के दिल काँप उठते थे मगर ये हज़रत अली की ज़िन्दगी का सिर्फ़ एक पहलू था कि वो ज़ालिमों और मुजरिमों के ख़िलाफ़ बहुत सख़्त थे लेकिन दूसरी तरफ़ वो ईमानदार लोगों पर बहुत मेहरबान थे। वो यतीमों, बेवाओं और अपाहिजों के मसीहा थे। इसी वजह से हाकिम (शासक) बनने के बाद भी वो रात के अन्धेरे में अनाज की बोरी अपनी पीठ पर रखकर ग़रीबों और मोहताजों की मदद करने जाया करते थे।

इमाम हुसैन की माँ जनाबे फ़ातिमा(स.)

इमाम हुसैन की माँ एक सीधी, नेक और सच्ची औरत थीं। हज़रत मुहम्मद भी अपनी बेटी से बहुत प्यार करते थे वो कहते थे, "फ़ातिमा मेरे दिल का टुकड़ा है जिसने इसे सताया समझो उसने मुझे सताया"। हज़रत मुहम्मद को अपनी बेटी के पास से

जन्नत की ख़ुश्बू आती थी इसीलिये वो उन्हें अपने पास बिठाते थे। और यही नहीं, जब भी उनकी बेटी उनके सामने आती वो उनके एहतेराम (सम्मान) में खड़े हो जाया करते थे।

हज़रत फ़ातिमा इतनी सख़ी (दानी) औरत थीं कि जब उनकी शादी हुई और वो विदा होकर अपने शौहर के घर जा रही थीं तभी रास्ते में एक फ़क़ीर ने उनसे भीख माँगी। उस फ़क़ीर ने कहा कि मेरे पास तो ठीक तरह से तन ढाँकने के लिये कपड़े भी नहीं। जनाबे फ़ातिमा जैसे ही घर पहुँची उन्होंने ख़ुद तो पैवन्द लगे मामूली कपड़े पहन लिये और वो कपड़े जिसे पहनकर वो दुल्हन बनी थीं फ़क़ीर के लिये भिजवा दिये।

हज़रत फ़ातिमा और उनके घर के लोग इतने सख़ी (दानी) थे कि वो फ़क़ीरों और मोहताजों को कभी ख़ाली हाथ नहीं लौटाते थे। लिखा है कि बचपन में एक बार इमाम हुसैन और उनके भाई इमाम हसन बीमार पड़े तो उनके माँ–बाप (यानी हज़रत अली और हज़रत फ़ातिमा) ने मन्नत मानी कि अगर वो लोग सेहतमन्द हो जाएंगे तो वो तीन दिन तक लगातार रोज़े रखेंगे। फिर जब अल्लाह के करम से दोनों बच्चे तन्दुरुस्त हो गये तो माँ–बाप ने रोज़े रखे। उनकी देखा–देखी दोनों बच्चों और यहाँ तक कि घर की नौकरानी फ़िज़्ज़ा ने भी रोज़े रखे। जब पहले दिन रोज़ा रखने के बाद शाम का वक़्त हुआ और रोज़ा खोलने की बारी आई तो घर के सभी लोग अपने सामने एक–एक रोटी और थोड़ा सा पानी रखकर रोज़ा खोलने बैठ गये। जैसी ही मग़रिब का वक़्त आया और उन लोगों ने हाथ रोटी की तरफ़ बढ़ाए, किसी शख़्स ने दरवाज़ा खटखटाया और आवाज़ दी कि मैं यतीम हूँ, मैं भूखा हूँ। क्या कोई ऐसा है जो मेरी भूख मिटा दे? उसकी आवाज़ सुनते ही हज़रत अली ने अपना हाथ रोक लिया ओर अपनी पूरी रोटी उस माँगने वाले को दे दी। फिर क्या था, एक–एक करके सभी घर वालों ने अपनी–अपनी रोटियाँ उसे दे दीं यहाँ तक कि दोनों नन्हें–नन्हें बच्चों ने भी। फिर सबने सिर्फ़ पानी से रोज़ा खोला

और रात में सो रहे।

दूसरे दिन फिर सबने रोज़ा रखा और जब शाम को रोज़ा खोलने का वक़्त अया तो किसी ने दरवाजा खटखटाकर कहा, "मैं मोहताज हूँ। क्या कोई है जो मेरी भूख मिटा दे?" फिर घर के सभी लोग उठे और उन्होंने अपनी–अपनी रोटियाँ उस मोहताज को दे दीं और सिर्फ़ पानी से रोज़ा खोलकर सो रहे।

तीसरे दिन आया तो सबने फिर से रोज़ा रखा। जब शाम का वक़्त आया तो एक बार फिर किसी ने दरवाज़ा खटखटाकर भूख मिटाने की बात कही। और पिछले दो दिनों की तरह घर के पाँचों लोगों ने अपनी–अपनी रोटियाँ माँगने वाले को दे दीं।

इस वाक़ेए से अल्लाह इतना ख़ुश हुआ कि उसने जिबरील नामी फ़रिश्ते को हज़रत मुहम्मद के पास भेजा और जिन लोगों ने रोटियाँ दीं थी उनकी तारीफ़ में कुरआन की आयतें (पक्तियाँ) भेजीं। वो पक्तियाँ आज भी कुरआन में लिखी हुई हैं।

इन तमाम बातों को बयान करने का मक़सद ये था कि आप अन्दाज़ा लगा सकें कि इमाम हुसैन और उनके घर वाले कितने नेक और अच्छे लोग थे। और जब बाद में दुश्मनों की बात आए तो आपको पता चल सके कि वो कितने नीच, बेरहम और ज़ालिम लोग थे।

इमाम हुसैन की जवानी का एक क़िस्सा :

ये बात उस वक़्त की है कि जब इमाम हुसैन कूफ़ा नामी शहर में रहा करते थे। उस दौर में उनके वालिद (बाप) हज़रत अली, मुसलमानों के हाकिम (शासक) थे। लिखा है कि उस ज़माने में कूफ़े में ऐसा सूखा पड़ा कि लोग पानी को तरसने लगे। फिर लोगों का एक गिरोह हज़रत अली के पास आया और उनसे बारिश की दुआ करने के लिये कहने लगा। हज़रत अली ने उसी पल अपने बेटे इमाम हुसैन से कहा कि बेटा! उठो और अल्लाह से बारिश की दुआ करो। बाप का हुक्म मिलते ही इमाम हुसैन

खड़े हुए। उन्होंने पहले अल्लाह का शुक्र अदा किया, फिर आख़िरी नबी पर रहमत की दुआ माँगी और उसके बाद कहा, "ऐ अल्लाह! तू अच्छी से अच्छी चीज़ों को अता करने वाला है, तू बरकतों को नाज़िल करने वाला है, हम पर मूसलाधार बारिश कर दे, हमारे पास ऐसे बादल भेज दे जो झूम–झूम कर बरसें .... जिनसे तेरे कमज़ोर बन्दों में नई जान पड़ जाए और मुर्दा ज़मीनें हरी–भरी हो जाएं .....। लिखा है कि जैसे ही इमाम हुसैन की दुआ ख़त्म हुई फ़ौरन मूसलाधार बारिश शुरू हो गई और वो कूफ़ा शहर जो मुर्दा हो चुका था उसमें रौनक़ आ गई।

इमाम हुसैन और करबला की क्रान्ति :

इमाम हुसैन की ज़िन्दगी का सबसे अहम पहलू जिसकी वजह से उन्हें आज भी सारी दुनिया याद करती है और बड़े से बड़े लोग जैसे महात्मा गाँधी, राजेन्द्र प्रसाद और राधा कृष्णन उन्हें अपना आदर्श मानते हैं, वो करबला के रेगिस्तान में दिया गया उनका बलिदान है।

लिखा है कि जब इमाम हुसैन की उम्र लगभग 57 साल हुई तो यज़ीद नामी तानाशाह हाकिम (शासक) बन बैठा। ये वही आदमी था जिसके बाप और दादा ने एक अर्से तक हज़रत मुहम्मद को ख़ूब–ख़ूब सताया था, उन्हें क़त्ल करने की कोशिश की थी और इतना परेशान किया था कि वो अपना वतन (मक्का) छोड़ने पर मजबूर हो गये थे। फिर जब वो मदीना चले गये तो वहाँ भी ये दोनों लश्कर लेकर जंग करने पहुँच गये। और एक नहीं, कई–कई जंगें उन पर थोप दीं। मगर फिर भी वो दोनों अपने मक़सद में कामयाब नहीं हुए और आख़िर में थक हारकर मुसलमान हो गए।

इस पसमन्ज़र (पृष्ठभूमि) को पढ़कर आप अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि जब यज़ीद गद्दी पर बैठा होगा तो उसके दिल में क्या रहा होगा। जहाँ तक उसके चाल–चलन का ताल्लुक़ है

तो किताबों में साफ़ लिखा है कि वो एक शराबी, जुआरी, क़ातिल और बेरहम इन्सान था। वो इतना ज़ालिम इन्सान था कि उसके शासन काल में उसकी फ़ौजों ने काबा पर पत्थर और अंगारे बरसाए थे।

यज़ीद की हरकतों से पता चलता है कि वो मुसलमानों के भेस में इस्लाम का सबसे बड़ा दुश्मन था। वो इस्लाम को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहता था। गद्दी पर बैठते ही उसने अपनी मनमानी शुरू कर दी और लोगों से कहा कि वो सब उसकी बैअत करें यानी उसे अपना हाकिम मानते हुए वादा करें कि वो हर बात में उसका हुक्म मानेंगे, चाहे वो हुक्म आदिलाना हो चाहे ज़ालिमाना।

मदीना में अपने गवर्नर को ख़त लिखकर उसने फ़रमान जारी किया कि वो लोगों से और ख़ास तौर पर इमाम हुसैन से बैअत ले ले और अगर वो बैअत करने से इन्कार करें तो उनको क़त्ल कर दे। फिर जब मदीना के गवर्नर ने इमाम हुसैन को अपने दरबार में बुलाया और यज़ीद के लिये बैअत चाही तो इमाम हुसैन ने उससे कहा, "ऐ गवर्नर! हम अल्लाह के नबी हज़रत मुहम्मद के घराने के लोग हैं और वो हमारे घराने में थे, फरिश्ते हमारे दरवाज़े पर आते हैं और अल्लाह की ख़ास रहमत हम पर नाज़िल होती रहती है .... .. जबकि यज़ीद एक गुनाहगार, मुजरिम, शराबी, क़ातिल और खुलेआम गुनाह करने वाला आदमी है। इसलिये (सुन लो कि) मुझ जैसा इन्सान उस जैसे आदमी की बैअत नहीं कर सकता (यानी उसके सामने सर नहीं झुका सकता)।"

इमाम हुसैन की ये बात अपने अन्दर बहुत बड़ा संदेश लिये हुए है। उन्होंने न सिर्फ़ ख़ुद ज़ुल्म के सामने झुकने से इन्कार कर दिया बल्कि ये भी बता दिया कि आने वाली नस्लों में भी जो लोग सच्चे और इन्साफ़–पसन्द होंगे वो कभी ज़ुल्म के सामने नहीं झुकेंगे।

अगले दिन जब मदीना की एक सड़क पर इमाम हुसैन की

मुलाक़ात यज़ीद के एक साथी, जिसका नाम मरवान था, से हुई तो उसने इमाम हुसैन से धमकी भरे लहजे में कहा, "आप यज़ीद की बैअत कर लीजिये। इसी में आपकी भलाई होगी।" उसकी धमकी सुनते ही इमाम हुसैन ने उससे कहा, "हम अल्लाह के (बन्दे) हैं और हमें अल्लाह की तरफ़ पलट कर जाना है। और (रही बात इस्लाम की तो ऐसे) इस्लाम पर मेरा (दूर से) सलाम है जिसके मानने वाले लोग यज़ीद जैसे को अपना हाकिम (शासक) मान लें...."

इमाम हुसैन के इस बयान से पता चलता है कि मुसलमान दो तरह के होते हैं : एक वो जो ज़ुल्म के आगे घुटने टेक देते हैं और दूसरे वो जो ज़ुल्म से टक्कर लेते हैं।

फिर अगले दिन इमाम हुसैन ने ये तय किया कि वो मदीना छोड़ देंगे। वो चाहते थे कि मक्का जाकर मुसलमानों को झिंझोड़े और बताएं कि अगर वो लोग यज़ीद के ख़िलाफ़ आवाज़ बलन्द नहीं करेंगे तो इस्लाम मिट जाएगा। अपनी तहरीक (आन्दोलन) को शुरू करने के लिये इमाम हुसैन ने मक्का शहर को इसलिये चुना था क्योंकि वहाँ काबा था। साथ ही मक्का को सारी इस्लामी दुनिया का मरकज़ (केन्द्र) माना जाता था।

जब इमाम हुसैन, मदीना से निकलने लगे तो उन्होंने ख़ानदान के तमाम लोगों को भी अपने साथ ले लिया। उनमें उनके बेटे, भाई, भतीजे, भान्जे, दोस्त और यहाँ तक कि घर की औरतें और बच्चे भी शामिल थे। दरअस्ल, इमाम हुसैन को मालूम था कि वो अब कभी मदीना लौट कर नहीं आएंगे।

मदीना से निकलते वक़्त इमाम हुसैन ने अपना वसीयत नामा लिखा और उसे अपने सौतेले भाई मुहम्मद हनफ़िया के हवाले किया। उस वसीयत नामे में जहाँ सारी बातें लिखी थीं वहाँ ये भी लिखा था कि "मैं (अपने वतन मदीना से) मौज-मस्ती, सैर-सपाटे या ज़ुल्म करने के लिये नहीं निकला हूँ। मैं तो सिर्फ़ इसलिये निकला हूँ ताकि अपने नाना की उम्मत (यानी मुसलमानों) का

सुधार कर सकूँ। मैं चाहता हूँ कि लोगों को अच्छाई की तरफ़ बुलाऊँ और उन्हें बुराई से रोकूँ ....।

इमाम हुसैन से इस वसीयत नामे से साफ़ ज़ाहिर है कि उनका मक़सद क्या था। वो लोगों को अच्छाई, भलाई और नेकी की तरफ़ बुलाना चाहते थे और उन्हें बुराई, ज़ुल्म और ना–इन्साफ़ी से रोकना चाहते थे।

किताबों में लिखा है कि जिस वक़्त इमाम हुसैन मदीना से निकल रहे थे उस वक़्त वहाँ के कई लोगों ने आकर उन्हें सलाह दी कि वो यज़ीद की मुख़ालिफ़त (विरोध) न करें वरना यज़ीद उन्हें क़त्ल करवा देगा। मगर इमाम हुसैन ने उनके जवाब में कहा, "ज़िल्लत की जिन्दगी से इज़्ज़त की मौत बेहतर है।"

इमाम हुसैन का मक्का पहुँचना :

मदीना से निकलने के पाँच दिनों बाद इमाम हुसैन मक्का पहुँचे। फिर वो वहाँ लगभग 4 महीना रहे। इस दौरान उन्होंने उन तमाम मुसलमानों तक जो काबे के दीदार और हज व उमरह के लिये आ रहे थे अपना पैग़ाम पहुँचाया। यही नहीं, उन्होंने कूफ़ा और बसरह जैसे अहम शहरों के मुसलमानों को भी ख़त लिखकर आगाह किया कि अगर उन्होंने यज़ीद जैसे ज़ालिम इन्सान के चन्गुल से इस्लाम को आज़ाद नहीं कराया तो इस्लाम हमेशा के लिये बन्धक बन कर रह जाएगा।

जब यज़ीद को इमाम हुसैन के मक्का पहुँचने और वहाँ पर तक़रीरें (भाषण) करने की ख़बर मिली तो उसने हाजियों के भेस में क़ातिलों को भेजा ताकि वो हज के दौरान इमाम हुसैन को क़त्ल कर दें। यज़ीद की ये हरकत वही थी जिसे आज आतंकवाद कहा जाता है।

इमाम हुसैन को जैसे ही इस बात की ख़बर मिली उन्होंने तय कर लिया कि वो मक्का भी छोड़ देंगे। बात दरअस्ल ये थी

कि इस्लाम कहता है कि मक्का शहर के अन्दर ख़ून बहाना हराम है। चाहे वो इन्सान का ख़ून हो या जानवर का। कुरआन ने मक्का को अम्न व अमान का शहर कहा है। इसलिये इमाम हुसैन ये नहीं चाहते थे कि मक्के के अन्दर ख़ून–ख़राबा हो। उनको ये भी नहीं कुबूल था कि उनकी शहादत ढकी–छिपी रहे और कुछ लोग हाजियों के भेस में आकर उन्हें चुपके से क़त्ल कर दें। वो तो बहादुरों की तरह लड़ते हुए अपनी शहादत पेश करना चाहते थे।

इमाम हुसैन का मक्का से कूफ़ा (इराक़) की तरफ़ कूच :

मक्का में रहने के दौरान एक तरफ़ इमाम हुसैन को ख़बर मिली कि यज़ीद उन्हें क़त्ल करवा देना चाहता है तो दूसरी तरफ़ उनके पास कूफ़ा नामी शहर के बहुत से लोगों ने ख़त लिखे कि आप जल्द से जल्द कूफ़ा चले आइये हम आपकी तहरीक (आन्दोलन) में आपका साथ देने के लिये तैयार हैं। बहरहाल, इन हालात में इमाम हुसैन ने कूफ़ा (इराक़) जाने का फ़ैसला किया। उन्होंने अपने बेटों, भाइयों, भतीजों, भान्जों, घर के बच्चों और औरतों (जैसे कि बहनों, बेटियों व भतीजियों) और दोस्तों को साथ लिया और हज से ठीक दो दिन पहले मक्का से कूफ़ा की तरफ़ रवाना हो गये।

मक्का से कूच के पहले इमाम हुसैन ने लोगों की भीड़ के सामने खड़े होकर एक तक़रीर (भाषण) की। जिसमें उन्होंने अल्लाह का शुक्र अदा करने के बाद कहा, "इन्सानों के ऊपर (इज़्ज़त वाली मौत) उसी तरह सजती है जैसे जवान लड़कियों के गले में ख़ूबसूरत हार।"

रास्ता बहुत लम्बा था, लगभग 2000 किमी का। इसलिये इमाम हुसैन और उनके साथी राह में कई जगह ठहरे। इस दौरान, हर मन्ज़िल पर जो लोग मिलते वो उन्हें उस वक़्त हालात

और उनकी ज़िम्मेदारियों के बारे में आगाह करते। साथ ही वो लोगों को अपनी मुहिम (अभियान) से जोड़ते रहे।

फिर एक मन्ज़िल पर ऐसा भी हुआ कि उन्हें अपने चचेरे भाई हज़रत मुस्लिम की शहादत की ख़बर मिली। कूफ़े से आ रहे मुसाफ़िरों ने बताया कि कूफ़े में यज़ीद के गर्वनर, इब्ने ज़ियाद ने हज़रत मुस्लिम को बड़ी बेरहमी से क़त्ल कर दिया है। चचेरे भाई की शहादत की ख़बर सुनने के बाद भी इमाम हुसैन के क़दमों में ज़रा सी लड़खड़ाहट नहीं हुई और वो कूफ़े की तरफ़ आगे बढ़ते रहे।

यज़ीद ने उन्हें रास्ते में ही रोक कर गिरफ़्तार करने के लिये 1000 आदमियों का लश्कर भेजा। उन फ़ौजियों का कमाण्डर हुर नामी आदमी था। जिस वक़्त इमाम हुसैन की निगाह हुर और उसके साथियों पर पड़ी, उन्होंने देखा कि वो लोग बहुत प्यासे हैं। इमाम हुसैन ने फ़ौरन अपने साथियों को हुक्म दिया कि वो हुर और उसके लश्कर को पानी पिलाएं। फिर सबको पानी पिलाया गया। यहाँ तक कि लश्कर के घोड़ों को भी। उस ज़माने में रेगिस्तानी सफ़र में सबसे क़ीमती चीज़ पानी हुआ करती थी ख़ास तौर पर गर्मी के मौसम में। मगर फिर भी इमाम हुसैन ने अपने दुश्मनों को पानी पिलाकर हमेशा के लिये एक मिसाल क़ायम कर दी। इसी वजह से आज भी इमाम हुसैन की याद में दुनिया के कोने–कोने में प्यासों को पानी पिलाया जाता है और सभी को इमाम हुसैन का ये सन्देश दिया जाता है कि हमें आपसी झगड़े और मतभेद भूल कर सबसे पहले इन्सानियत का ख़्याल रखना चाहिये क्योंकि सबका मालिक अल्लाह है।

बहरहाल, जब हुर का लश्कर पानी पी चुका तो उसने अपने आने और इमाम हुसैन का रास्ता रोकने का मक़सद बयान किया। इमाम हुसैन ने हुर के जवाब में कहा कि तेरी क्या हिम्मत जो मुझे गिरफ़्तार करे और इब्ने ज़ियाद (कूफ़े के

गवर्नर) के पास क़ैदी बनाकर ले चले? हुर ने जब इमाम हुसैन के तेवर देखे तो कहा : अगर आपको मेरी बात कुबूल नहीं तो कम से कम इतना मान लीजिये कि अपने कारवान का रास्ता बदल दीजिये ताकि मैं कूफ़े के गवर्नर को ख़त लिख कर पूछ सकूँ कि अब मुझे क्या करना है? अलबत्ता इस दौरान मैं अपने लश्कर को लेकर आपके साथ चलता रहूँगा। हुर की इस सलाह को इमाम हुसैन ने मान लिया और रास्ता बदल कर आगे बढ़ने लगे।

रास्ते में एक जगह जब इमाम हुसैन और हुर के साथियों ने पड़ाव डाला तो इमाम हुसैन ने तमाम लोगों को जमा करके उनके सामने तक़रीर (भाषण) की और वो बात कही जो आजतक शिया इस्लाम की पहचान मानी जाती है। उन्होंने कहा : ऐ लोगों! अल्लाह के नबी (हज़रत मुहम्मद) ने कहा था कि जो इन्सान ये देखे कि एक ऐसा ज़ालिम शख़्स हाकिम (शासक) बन बैठा है जो उन चीज़ों को हलाल कर रहा है जिनको अल्लाह ने हराम क़रार दिया है और जो अल्लाह के क़ानून को तोड़ रहा है, उसके पैग़म्बर के रास्ते की मुख़ालिफ़त (विरोध) कर रहा है और अल्लाह के बन्दों के साथ ज़ुल्म व सितम से पेश आ रहा है, फिर भी वो (इन्सान ख़ामोश तमाशाई बना रहे और) अपनी ज़बान या हाथ–पैर से उसकी मुख़ालिफ़त (विरोध) न करे तो अल्लाह उसका ठिकाना जहन्नम में बना देगा।

और (ऐ लोगों!) जान लो कि ये लोग (यानी यज़ीद और उसके साथी) वो हैं जो शैतान के रास्ते पर चल पड़े हैं और अल्लाह की बात मानने से इन्कार कर रहे हैं। ये लोग फ़साद फैला रहे हैं, क़ानून को तोड़ रहे हैं, माल–दौलत लूट रहे हैं, हराम को हलाल कह रहे हैं और हलाल को हराम कह रहे हैं।

(ऐ लोगों!) आगाह हो जाओ कि मैं इस बात के लिये तुमसे ज़्यादा मुनासिब हूँ कि इनकी मुख़ालिफ़त (विरोध) करूँ (और इन्हें रोकूँ)।

इमाम हुसैन करबला की सर ज़मीन पर :

इमाम हुसैन अपने साथियों के साथ उसी तरह आगे बढते रहे। हुर और उसका लश्कर भी उनके साथ रहा। फिर एक दिन चलते–चलते अचानक इमाम हुसैन का घोड़ा रेगिस्तान के बीचो–बीच एक जगह पर रुक गया। उस दिन मोहर्रम महीने की दूसरी तारीख़ थी। इमाम हुसैन ने लाख चाहा कि उनका घोड़ा आगे बढ़े मगर वो आगे नहीं बढ़ा। तब इमाम हुसैन ने आस–पास के लोगों से पूछा कि इस जगह का नाम क्या है? उन्होंने बताया कि इस जगह को करबला कहते हैं। बस जैसे ही ये सुना, इमाम हुसैन ने अपने साथियों से कहा कि तुम सब यहीं पर अपने घोड़ों पर से उतर पड़ो और यहीं ख़ैमे लगाओ क्योंकि मेरे नाना (हज़रत मुहम्मद(स)) ने मुझे ख़बर दी थी कि इसी जगह हमारे ख़ैमे लगाए जाएंगे, इसी जगह हमारे सवार घोड़ों से गिरेंगे और इसी जगह हमारा खून बहाया जाएगा।

उधर दूसरी तरफ़ कूफ़ा शहर के गवर्नर इब्ने ज़ियाद का ख़त हुर के पास आ पहुँचा। इब्ने ज़ियाद, हज़रत मुहम्मद के घराने का सख़्त दुश्मन था। ख़त में लिखा था, "ऐ हुर! जिस जगह तुमको मेरा ये ख़त मिले उसी जगह हुसैन और उनके साथियों को रोक दो और जितना हो सके उनके साथ सख़्ती से पेश आओ। और याद रहे, उन्हें बस ऐसी जगह पर ख़ेमा लगाने देना जहाँ पानी की एक बूँद न मिलती हो।"

इस ख़त का मिलना था कि यज़ीदी फ़ौज ने इमाम हुसैन और उनके साथियों को नहर से बहुत दूर ख़ेमा लगाने पर मजबूर कर दिया। उस मौक़े पर इमाम हुसैन के बहादुर साथियों ने कहा कि यज़ीदी फ़ौज की क्या मजाल जो हमें नहर के किनारे ख़ेमे लगाने से रोक सके। मगर इमाम हुसैन ने उन्हें ये कह कर रोक दिया कि जंग की शुरूआत हम नहीं करना चाहते।

अपने इस जुमले से इमाम हुसैन ने सारी दुनिया को ये बता दिया कि जो इस्लाम के सच्चे मानने वाले होते हैं वो कभी जंग

की शुरूआत नहीं करते। ऐसे लोगों को ख़ून–ख़राबे और लड़ाई झगड़े से नफ़रत होती है।

करबला के रेगिस्तान में गुज़रे आठ दिन :

जैसा कि हमने बताया दुश्मन की फ़ौज ने इमाम हुसैन और उनके साथियों को नहर के पास ख़ेमे लगाने से रोक दिया और मजबूर किया कि वो उस जगह से बहुत दूर अपना पड़ाव डालें। हालाँकि उस वक़्त इमाम हुसैन के साथ छोटे–छोटे बच्चे थे और उन्हें पानी की बहुत ज़रूरत थी।

ग़ौरतलब बात ये है कि उस वक़्त इमाम हुसैन के साथ लगभग 40–50 मर्द थे जबकि दुश्मन की फ़ौज में 1000 आदमी थे फिर भी दुश्मन की फ़ौज में बढ़ोत्तरी होती रही। रोज़ाना फ़ौज की नई–नई टुकड़ियाँ आती रहीं। कभी कोई कमाण्डर अपनी टुकड़ी लाया तो कभी कोई कमाण्डर। कभी किसी टुकड़ी में तीन हज़ार फ़ौजी होते थे तो कभी किसी में चार हज़ार। बहरहाल, धीरे–धीरे करके यज़ीद के भेजे हुए तीस हज़ार सिपाही करबला में जमा हो गये। जबकि दूसरी तरफ़ इमाम हुसैन के साथियों को उँगलियों पर गिना जा सकता था। तादाद का ये फ़र्क़ ख़ुद इस बात का गवाह है कि यज़ीद और उसके फ़ौजी, इमाम हुसैन और उनके साथियों के कितना डरे हुए थे। दरअस्ल, वो इससे पहले इमाम हुसैन के बाप (हज़रत अली) की बहादुरी को देख चुके थे जो अकेले ही हज़ारों की फ़ौज पर भारी पड़ते थे।

करबला में इमाम हुसैन को पहुँचे पाँच दिन गुज़रे थे कि दुश्मन ने इमाम हुसैन और उनके साथियों को नहर तक आकर पानी लेने से भी रोक दिया और नहर पर पहरे बिठा दिये। फिर क्या था, इमाम हुसैन और उनके साथी प्यास से तड़पने लगे। ख़ासतौर पर इमाम हुसैन के घर के वो बच्चे जो छोटे–छोटे थे और उनके साथ मदीना से आए थे।

जब तीन दिन की भूख और प्यास बर्दाश्त करने के बाद भी

इमाम हुसैन और उनके साथी दुश्मन के सामने नहीं झुके तो यज़ीदी फ़ौज ने फ़ैसला किया कि वो रात के वक़्त इमाम हुसैन और उनके साथियों पर हमला कर देगी।

इमाम हुसैन को जैसे ही इस बात की ख़बर मिली उन्होंने दुश्मन के कमाण्डर के पास कहला भेजा कि सिर्फ़ एक रात और ठहर जाओ। हम मरने से नहीं डरते मगर चाहते हैं कि अपनी जिन्दगी की आख़िरी रात नमाज़ और कुरआन पढ़कर बिताएं। बहरहाल, बड़ी मुश्किल से दुश्मन एक रात ठहरने के लिये तैयार हुआ।

दस मोहर्रम का दिन :

अगली सुबह जब मोहर्रम महीने की दस तारीख़ थी तो अजीब मन्ज़र (दृश्य) था। एक तरफ़ इमाम हुसैन का बेटा नमाज़ के लिये अज़ान दे रहा था और यज़ीद की तरफ़ उसका सबसे बड़ा कमाण्डर (उमर बिन साद) अपने फ़ौजियों से कह रहा था कि तुम लोग गवाह रहना इस जंग का पहला तीर मैं चलाने जा रहा हूँ।

अभी जंग शुरू नहीं हुई थी कि एक बड़ा दिलचस्प वाक़ेया पेश आया। यज़ीद की फ़ौज का एक कमाण्डर (वही आदमी जो इमाम हुसैन को घेर कर करबला तक लाया था और जिसका नाम हुर था) अपनी फ़ौज से निकल कर इमाम हुसैन की तरफ़ आ गया। दरअस्ल, उसने जब ये जान लिया कि यज़ीदी फ़ौज हर हालत में इमाम हुसैन और उनके 72 साथियों से लड़कर रहेगी तो उसके अन्दर की इन्सानियत जाग उठी। क्योंकि वो अपने कानों से हुसैन के बच्चों की "हाय प्यास, हाय प्यास" की आवाज़ें सुन रहा था। उससे ये बर्दाश्त न हुआ कि यज़ीदी फ़ौज के तो घोड़े भी पानी पियें और हुसैन के नन्हें–नन्हें बच्चे पानी के लिये तड़पें।

बहरहाल, यज़ीदी फ़ौज का वो कमाण्डर इमाम हुसैन के

साथियों में शामिल हो गया और वो भी इस तरह कि जब वो हुसैन की तरफ़ आ रहा था तो उसकी आँखों पर पट्टी थी और हाथ बंधे थे। दरअस्ल, उसे हुसैन से शर्मिन्दगी थी इसलिये वो उनसे माफ़ी माँगना चाहता था। बहरहाल, यज़ीद के कमाण्डर का हुसैन की तरफ़ आना, हुसैन की जीत का ऐलान था।

मोहर्रम महीने की दस तारीख़ (आशूरा) की जंग :

हमने बताया कि दस मोहर्रम के दिन जंग की शुरूआत यज़ीद की तरफ़ से हुई और पहला तीर उधर से चलाया गया। दरअस्ल, इन्सानियत के दुश्मनों की एक निशानी ये भी है कि जंग में पहल हमेशा वो करते हैं।

बहरहाल, जिस वक़्त जंग शुरू हुई उस वक़्त इमाम हुसैन की तरफ़ 72 लोग थे जबकि यज़ीदी फ़ौज में 30000 आदमी। और इस हिसाब से अगर देखा जाए तो जंग को कुछ मिनटों में ही ख़त्म हो जाना चाहिये था। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। बल्कि जंग दोपहर बाद तक चली। वजह ये थी कि इमाम हुसैन और उनके साथी इतने बहादुर थे कि वो दुश्मन के कई–कई सौ आदमियों पर भारी पड़ रहे थे। वो प्यासे होने के बाद भी दुश्मन के सामने झुकने को तैयार न थे। उनके अन्दर मौजूद अल्लाह पर भरोसे ने उन्हें लोहे से भी ज़्यादा मज़बूत बना दिया था। लिखा है कि अकेले इमाम हुसैन ने यज़ीदी फ़ौज के 1800 लोगों को क़त्ल किया हालाँकि उस वक़्त इमाम हुसैन बेहद प्यासे थे और सबसे आख़िर में लड़े थे।

यूँ तो इमाम हुसैन के सभी साथी ऐसे थे जिनकी जंग और शहादत का वाक़ेया (विवरण) पेश करने लायक़ है मगर हम यहाँ पर सिर्फ़ कुछ ही कुरबानी का हाल बयान कर रहे हैं।

सबसे पहले इमाम हुसैन के उस नौकर की कुरबानी का हाल जिसका नाम जौन था। वो एक काला और हब्शी इन्सान था। वो एक अर्से से इमाम हुसैन के ख़ानदान की ख़िदमत करता चला

आ रहा था। जब दस मोहर्रम को इमाम हुसैन के साथी एक–एक करके जंग के मैदान में जा रहे थे और शहीद हो रहे थे तो जौन उनको देख रहा था। उसके भी दिल में हक़ पर जान देने का जोश था मगर हर बार वो ये सोचकर ख़ामोश बैठ जाता था कि वो एक नौकर है। मगर जब उससे रहा न गया तो वो हाथ जोड़कर इमाम हुसैन के पास आया और बोला, "ऐ इमाम! मैं भी मैदान में जाकर जंग करते हुए इस्लाम के लिये अपनी जान देना चाहता हूँ। क्या आप मुझे इजाज़त देंगे?" इमाम हुसैन ने कहा, "तुम बूढ़े हो चुके हो। हमारी वजह से ख़ुद को परेशानी में मत डालो।" ये सुनकर जौन ने इमाम हुसैन से कहा, "मालिक! क्या ये सही होगा कि जब अच्छे दिन हों तो मैं आपके साथ रहूँ मगर जब आप पर बुरे दिन आएं तो आपको छोड़कर चला जाऊँ?" इमाम ने जौन से फिर वही बात दोहराई तो जौन ने कहा, "मुझे मालूम है कि आप मुझे जंग के मैदान में क्यों नहीं जाने दे रहे हैं। दरअस्ल मेरे अन्दर तीन ऐब हैं : (1) मेरे पसीने से बदबू आती है (क्योंकि मैं काला हब्शी हूँ) (2) मेरा ख़ानदान ऊँचा नहीं है (3) मेरा रंग काला है। क्या आप मुझे इन्हीं तीन ऐबों की वजह से रोकना नहीं चाहते? .... और अगर ऐसा है तो सुन लीजिये कि ख़ुदा की क़सम! मैं भी आपसे तब तक जुदा नहीं होऊँगा जब तक कि अपने बदबूदार ख़ून को आपके ख़ुश्बूदार ख़ून में मिला नहीं लूँगा।

जौन के ये जुमले इतने जज़्बाती (भावुक) थे कि इमाम हुसैन रोने लगे। उधर जौन भी इमाम हुसैन के हाथ चूमता जाता था और रोता जाता था। आख़िर में इमाम हुसैन ने जौन को मैदान में जाने की इजाज़त दे दी।

इजाज़त मिलते ही वो मैदाने जंग में आए और बहादुरों और शेरों की तरह दुश्मन पर टूट पड़े। यहाँ तक कि उन्होंने 25 आदमियों को क़त्ल किया। मगर आख़िर में लहू–लुहान होकर ज़मीन पर गिरे और शहीद हो गये। इमाम हुसैन दौड़ते हुए उनके

सरहाने पहुँचे और बैठ गये। उन्होंने जौन के सर को उठाकर अपनी गोद में रखा और आसमान की तरफ़ निगाह करते हुए कहा, "ऐ अल्लाह! इसके चेहरे को नूरानी बना दे, इसके बदन को ख़ूश्बूदार कर दे और इसे मेरे ख़ानदान वालों के पास जन्नत में पहुँचा दे।" लिखा है कि इमाम हुसैन की इस दुआ का असर ये हुआ कि शहादत के तीन दिन बाद भी जब कुछ लोग करबला के मैदान में आए तो उन्होंने देखा कि जौन की लाश से नूर निकल रहा है और उससे ख़ुश्बू आ रही है।

करबला के मैदान में जहाँ हुसैन के दोस्तों और साथियों ने सच्चाई की ख़ातिर अपनी जान की कुरबानी दी वहीं उनके घर वाले भी पीछे नहीं हटे। घर वालों में जो नाम सबसे ज़्यादा लिया जाता है वो उनके सौतेले भाई अब्बास का है।

हज़रत अब्बास का क़द लम्बा, जिस्म मज़बूत और सीना चौड़ा था। उनका चर्चा अरब के बहादुरों में होता था। बड़े से बड़ा सूरमा उनके समाने आने से डरता था। कहा जाता है कि वो अकेले ही सैकड़ों पर भारी पड़ते थे। इमाम हुसैन ने उन्हें अपने लश्कर का कमाण्डर बनाया था। दस मोहर्रम के दिन पहले तो इमाम हुसैन की तरफ़ से उनके दोस्त और साथी जंग के मैदान में गये फिर उनके घर और ख़ानदान के लोग। इसकी वजह ये थी कि इमाम हुसैन के दोस्त व साथी बहुत वफ़ादार थे। उन्होंने इमाम हुसैन से कहा कि ये कैसे हो सकता कि हमारे रहते आप पर या आपके ख़ानदान वालों पर कोई आँच आए? इसलिये पहले हम शहीद होंगे।

बहरहाल, जब वो दोस्त और साथी एक–एक करके शहीद हो गये तो घर वालों की बारी आई। फिर वो एक–एक करके जंग लड़ने मैदान में जाने लगे। होते–होते वो वक़्त भी आया जब इमाम हुसैन के भाई हज़रत अब्बास ने आकर उनसे कहा : ऐ इमाम! अब मुझसे रहा नहीं जाता। मेरा दिल सीने में तंग हो गया है। मुझसे बर्दाश्त नहीं होता कि दुश्मन की फ़ौजें मेरे

लश्कर के लोगों को इस तरह क़त्ल करें और मैं ख़मोशी से देखता रहूँ। इसलिये अब आप मुझे इजाज़त दीजिये ताकि मैं मैदान में जाकर इनका जवाब दूँ।

ये सुनकर इमाम हुसैन ने उनसे कहा : पहले ज़रा बच्चों के लिये नहर से पानी ला दो। क्योंकि बच्चे प्यास से तड़प रहे हैं। इमाम हुसैन का हुक्म मिलते ही हज़रत अब्बास उस ख़ेमे में गए जिसमें मश्कें[1] रखी हुई थीं। इसी बीच इमाम हुसैन की बेटी, जिसका नाम सकीना था, एक सूखी हुई मश्क हज़रत अब्बास के पास ले आई। हज़रत अब्बास ने भतीजी से मश्क ली और कहा कि घबराना नहीं अब तुम्हारी प्यास जल्द बुझ जाएगी क्योंकि मैं तुम्हारे लिये पानी लेने जा रहा हूँ।

भतीजी से इतना कहकर हज़रत अब्बास ने हाथ में एक नैज़ा (भाला) लिया और घोड़े पर सवार हो गए। उस ज़माने में सिर्फ़ नैज़ा लेकर मैदाने जंग में आने का मतलब ये था कि वो सूरमा जंग लड़ने नहीं बल्कि किसी और मक़सद से मैदान में आया है। और यही हक़ीक़त भी थी। क्योंकि हज़रत अब्बास सिर्फ़ पानी लाने के लिये ख़ेमे से निकले थे। अगर उनका इरादा जंग का होता तो उनके हाथ में तलवार होती।

बहरहाल, जैसे ही हज़रत अब्बास ख़ेमे से निकले और नहर की तरफ़ जाने लगे दुश्मन की फ़ौजों ने जंग के क़ानून को तोड़ते हुए उन पर हमला कर दिया। मगर हज़रत अब्बास इतने बहादुर थे कि वो नैज़े (भाले) से ही दुश्मन के हर वार का जवाब देते रहे। थोड़ी देर में हाल ये हो गया कि दुश्मन की फ़ौजें डर कर भागने लगीं। हज़रत अब्बास ने उन चार हज़ार फ़ौजियों के घेरे को भी तोड़ दिया जो नहर की पहरेदारी के लिये रखे गए थे। कुछ ही पलों बाद सबने देखा कि हज़रत अब्बास घोड़ा लेकर नहर में उतर चुके हैं। किसी की हिम्मत नहीं हुई कि उनके क़रीब

---

[1] मश्क, चमड़े से बना एक थैला होता था। जिसे पुराने ज़माने में पानी भरने के लिये इस्तेमाल किया जाता था।

जाए। और ऐसा हो भी कैसे सकता था क्योंकि हज़रत अब्बास, हज़रत अली के बेटे थे।

फिर हज़रत अब्बास ने मश्क पानी से भरी और एक चुल्लू पानी हाथ में लिया। वो उस वक़्त बेहद प्यासे थे क्योंकि तीन दिन हो चुके थे उन्होंने पानी का एक क़तरा नहीं पिया था। मगर तभी उन्हें इमाम हुसैन और उनके प्यासे बच्चों का ख़्याल आया। उन्होंने चुल्लू में लिये पानी को वापस नहर में फेंक दिया। आज दुनिया अब्बास की इसी वफ़ादारी को सलाम करती है कि उन्होंने प्यास होने के बावजूद अपने इमाम और लीडर की ख़ातिर पानी नहीं पिया।

बहरहाल, जब हज़रत अब्बास पानी लेकर इमाम हुसैन के ख़ेमों की तरफ़ लौटने लगे तो दुश्मन ने धोखा करते हुए पीछे से वार किया जिससे उनका बायाँ हाथ कट गया। मगर उन्होंने इसकी परवाह न की। वो घोड़े को हुसैन के ख़ेमों की तरफ़ बढ़ाते रहे। मगर तभी किसी ने छिपकर उनके दाहिने बाज़ू पर वार किया जिससे उनका दाहिना बाज़ू भी कटकर ज़मीन पर गिर पड़ा। अब्बास ने मश्क के तस्मे को दाँतों से दबा लिया और घोड़े को एड़ दी कि किसी तरह पानी सकीना तक पहुँच जाए और हुसैन का हुक्म पूरा हो जाए। मगर तभी एक यज़ीदी फ़ौजी ने हज़रत अब्बास के सर पर ऐसा गुर्ज़ (गदा) मारा कि वो घोड़े से गिर पड़े। इमाम हुसैन जो दूर ख़ड़े सारा मन्ज़र देख रहे थे, तेज़ी से हज़रत अब्बास की तरफ़ लपके। जब वो उनके पास पहुँचे तो देखा कि हज़रत अब्बास की एक आँख में तीर लगा है और दूसरी आँख में ख़ून भरा हुआ है। जब हुसैन ने उस आँख को साफ़ किया जिसमें ख़ून था तो भाई ने भाई के चेहरे को देखा। हज़रत अब्बास ने इमाम हुसैन से वसीयत करते हुए कहा, "ऐ मेरे आक़ा (सरदार)! मेरी लाश को ख़ेमों में न ले जाइयेगा क्योंकि मैंने आपकी बेटी सकीना से पानी लाने का वादा किया था। और अब मुझे शर्म आ रही है कि मैं अपना वादा पूरा न कर सका।" सलाम है हमारा हज़रत अब्बास पर कि जिन्हें ज़िन्दगी के आख़िर पलों में भी एक

तीन साल की बच्ची से किये गए वादे का इतना ख़्याल था।

करबला के जवान शहीदों में हज़रत अली अकबर का नाम भी ख़ास तौर पर लिया जाता है। वो इमाम हुसैन के जवान बेटे थे। वो शक्ल–सूरत और चाल–ढाल में हज़रत मुहम्मद से बहुत मिलते–जुलते थे। लिखा है कि जब घर वालों की बारी आई तो इमाम हुसैन ने सबसे पहले उनको जंग के मैदान में भेजा। जब वो जंग के लिये जाने लगे तो अपनी फुफियों, माओं और बहनों से विदा होने के लिये उनके ख़ेमे में गये। उन्होंने जैसे ही बताया कि अब मैं मैदाने जंग में जा रहा हूँ, तमाम औरतें रोने–पीटने लगीं। बात दरअस्ल ये थी कि अली अकबर सभी की आँखों का तारा थे। वो बेहद हसीन और ख़ूबसूरत थे। कोई नहीं चाहता कि वो जंग के लिये जाएं और शहीद हो जाएं। मगर अली अकबर ने तमाम औरतों को ये कहकर समझाया कि इस वक़्त हमारे सामने सिर्फ़ दो रास्ते हैं: या तो हम अपनी जान को बचाने की ख़ातिर ज़लील होकर यज़ीद के सामने घुटने टेक दें या फिर इस्लाम बचाने की ख़ातिर बहादुरों की तरह अपनी जान निछावर कर दें। और हम चूँकि हज़रत अली के घर के लोग हैं इसलिये ज़िल्लत बर्दाश्त नहीं कर सकते।

फिर अली अकबर जंग करने के लिये मैदान में आए। तीन दिन की भूख और प्यास के बावजूद उन्होंने दुश्मनों के 120 आदमियों को मौत के घाट उतारा। फिर जब धूप की तेज़ी और प्यास की सख़्ती बर्दाश्त न हो सकी तो मैदान से वापस ख़ेमों की तरफ़ पलटे। हुसैन ने बेटे को वापस आते देखा तो पूछा कि इसकी क्या वजह है? बेटे ने जवाब दिया कि एक तरफ़ प्यास की सख़्ती और दूसरी तरफ़ हथियारों के वज़न ने मुझे थका दिया है। इमाम हुसैन ने जवान बेटे को प्यास से तड़पते देखा तो आँखों में आँसू आ गये। मगर फिर भी अली अकबर की हिम्मत बढ़ाई और उन्हें मैदान में दोबारा भेजा। इस बार फिर अली अकबर ने ज़ोरदार हमला किया और दुश्मन को भागने पर मजबूर कर दिया।

दुश्मन के कमाण्डर उमर बिन साद ने जब अपनी फ़ौज की ये हालत देखी तो दो हज़ार आदमियों की टुकड़ी अली अकबर से मुक़ाबले के लिये भेजी। अली अकबर फिर भी नहीं डरे और अकेले ही उन सबसे जंग करते रहे। तभी दुश्मन के एक फ़ौजी ने छिपकर पीछे से अली अकबर पर वार किया। और फिर दूसरे फ़ौजी ने सामने से एक नैज़ा (भाला) मारा जो उनके सीने को छेदता हुआ उस पार निकल गया। वो घोड़े से नीचे गिर पड़े। इमाम हुसैन तेज़ी से उनके सिरहाने पहुँचे। जब उनकी निगाह अली अकबर पर पड़ी तो क्या देखा वो अपने ही ख़ून में एड़ियाँ रगड़ रहे हैं। बाप ने बेटे से कहा: मेरे बेटे! अब तेरे बाद इस दुनिया की जिन्दगी पर ख़ाक है।

करबला में न सिर्फ़ अली अकबर को शहीद किया गया बल्कि इमाम हुसैन के छः महीने के नन्हें बच्चे को भी भूखा–प्यासा क़त्ल कर दिया गया। हुआ यूँ कि जब इमाम हुसैन के सभी साथी और घर वाले शहीद हो गए तो उन्होंने तय किया कि वो खुद मैदान में जाकर जंग करेंगे। इस इरादे से वो उस ख़ेमे में गए जिसमें ख़ानदान की औरतें और बच्चे थे ताकि वो उनसे अलविदा कह सकें। जब वो ख़ेमे के अन्दर पहुँचे तो उनकी बहन ने उनसे कहा कि आपका छः महीने का बच्चा प्यास से तड़प रहा है इसलिये जंग लड़ने से पहले आप उसे पानी पिला लाइये। इमाम हुसैन ने ये सोचते हुए कि अगर दुश्मन मेरे ऊपर रहम नहीं कर रहा है तो उसे इस नन्हे बच्चे पर रहम ज़रूर आएगा, अपनी बहन से कहा, "जाओ मेरे बच्चे को ले आओ। मैं उसे दुश्मनों के सामने लेकर जाता हूँ शायद कि वो उसके मुरझाये चेहरे को देखकर उसे पानी पिला दें।" इमाम हुसैन की बहन बच्चे को झूले से उठाकर इमाम हुसैन के पास ले आईं।

फिर इमाम हुसैन अपने छः महीने के बच्चे को गोद में लेकर दुश्मनों के सामने आए और उनसे कहा, "तुमने मेरे भाइयों, भतीजों, भान्जों और साथियों को क़त्ल कर दिया, अब

तो बस यही एक बच्चा बचा है। देखो! ये बच्चा प्यास की सख़्ती से चिड़िया की तरह मुँह खोल रहा और बन्द कर रहा है। इस बच्चे ने तो तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा है। मैं इसे तुम्हारे सामने इसलिये लाया हूँ कि तुम में से जो चाहे आगे बढ़कर इसे पानी पिला दे।" ये कहकर इमाम हुसैन ख़ामोश हो गए और इन्तेज़ार करने लगे कि दुश्मनों में से कोई आगे बढ़कर बच्चे को पानी पिला दे। मगर किसी को इतना तरस नहीं आया कि वो नन्हें से बच्चे की प्यास बुझाए।

फिर इमाम हुसैन ने बच्चे की तरफ़ देखा और उससे कहा, "बेटा! अगर ये लोग मेरी बात नहीं समझ रहे हैं तो तुम्हीं इन्हें बतला दो कि तुम कितने प्यासे हो।" इमाम हुसैन की बात सुनते ही बच्चे ने अपने चेहरे को दुश्मनों की तरफ़ घुमाया और अपनी सूखी हुई ज़बान मुरझाए हुए होंठों पर फेरनी शुरू कर दी। ये मन्ज़र इतना दर्दनाक था कि दुश्मन के फ़ौजी भी मुँह फेर-फेर कर रोने लगे। फ़ौज के कमण्डर को डर हुआ कि कहीं फ़ौज में बग़ावत न हो जाए। इसलिये उसने फ़ौरन एक मशहूर तीर-अन्दाज़ को हुक्म दिया कि वो बच्चे को तीर मारकर क़त्ल कर दे।

फिर क्या था, उस मशहूर तीर-अन्दाज़ ने एक भारी भरकम तीर कमान में जोड़ा और बच्चे के गले की तरफ़ तीर चला दिया। उधर हुसैन को अपने बच्चे का होंठों पर ज़बान फिराना इतना अच्छा लगा था कि वो बच्चे को चूमना चाह रहे थे। लिखा है कि इससे पहले कि हुसैन बच्चे को चूमते, तीर बच्चे के गले को छेदता हुआ हुसैन के बाज़ू में जा लगा। फिर तो बच्चे के गले से ख़ून का फ़व्वारा फूट पड़ा। ये करबला की ऐसी शहादत थी कि जिसे सुनकर आज भी दिल काँप उठता है और आँखें छलक उठती हैं।

बहरहाल, बच्चे की नन्हीं सी लाश लेकर हुसैन ख़ेमों के पीछे गए और उन्होंने तलवार की मदद से छोटी सी क़ब्र खोदी और

बच्चे को दफ़्न कर दिया। मगर दुश्मनों ने उस वक़्त ज़ुल्म की हदें पार कर दीं जब उन्होंने हुसैन की शहादत के बाद बच्चे की लाश को तलाश करना शुरू किया। वो चाहते थे कि लाश को निकालकर उसका सर काट लें। और फिर सर को नैज़े (भाले) की नोक पर लगाकर खुशियाँ मनाएं। इस काम के लिये वो ज़मीन पर नैज़ा (भाला) मारते हुए निकले। जब वो ख़ेमें के पीछे पहुँचे तो अचानक एक बार नैज़े की नोक के साथ बच्चे की लाश निकल आई। फिर उन्होंने वो काम अन्जाम दिया जिसको लिखते हुए क़लम थर्राता है।

इमाम हुसैन की शहादत :

लिखा है कि सबसे आख़िर में इमाम हुसैन जंग करने के लिये गए। उस वक़्त तक उनके सारे साथी और रिश्तेदार शहीद हो चुके थे। सिर्फ़ उनका एक बेटा बाक़ी बचा था। और वो बेटा भी इसलिये बच सका था क्योंकि वो सख़्त बीमार था।

बहरहाल, जंग के मैदान में जाने से पहले इमाम हुसैन अपने उस बीमार बेटे और ख़ानदान की औरतों से मिलने आए। उन्होंने बेटे से वसीयत करते हुए कहा कि हमारे बाद जब तुम मदीना जाना तो हमारे चाहने वालों को हमारा सलाम कहना और उनसे कहना कि वो जब–जब पानी पियें तो मेरी प्यास को याद रखें और जब उन्हें किसी परदेसी या शहीद की ख़बर दी जाए तो वो मेरा ग़म मनाएं।

इमाम हुसैन की ये वसीयत सिर्फ़ उस दौर के लोगों के लिये नहीं थी बल्कि ये रहती दुनिया तक के तमाम लोगों के लिये एक पैग़ाम था और इसी वजह से आज सारी दुनिया में उनकी याद में प्यासों को पानी पिलाया जाता है और हर शहीद के साथ उनका ज़िक्र किया जाता है।

अपने बेटे से वसीयत करने के बाद इमाम हुसैन ने घर की औरतों, जिनमें उनकी बहनें, बेटियाँ, भतीजियाँ और यहाँ तक कि

कनीज़ें (नौकरानियाँ) भी शामिल थीं, को अपना आख़िरी सलाम कहा। उन्होंने जैसे ही उन औरतों से कहा कि अब मैं तुमसे अलविदा कहने आया हूँ, सारी औरतें बिलख–बिलख कर रोने लगीं। उनमें से हर एक का यही सवाल था कि आप हमें किसके सहारे पर छोड़े जा रहे हैं? आपके बाद कौन हमारी देख–भाल करेगा? इमाम हुसैन ने उन सबको ये कहकर तसल्ली दी कि तुम्हारा सहारा अल्लाह है और जिसका सहारा अल्लाह होता है वो कभी बेसहारा नहीं होता। दरअस्ल, वो औरतें इसलिये परेशान थीं कि वो नहीं जानती थीं कि हुसैन के बाद वो उस रेगिस्तान में कहाँ जाएंगी और दुश्मन उन पर कौन–कौन से ज़ुल्म ढाएगा। और बाद में उनका डर सही निकला। दुश्मन के फ़ौजियों ने उन्हें कई–कई दिन तक भूखा–प्यासा रखा, उन सभी के गले एक ही रस्सी में बाँधकर बग़ैर चादर पहले रेगिस्तान में चलाया और फिर शहर के बाज़ारों में फिराया, उनकी पीठ पर कोड़े मारे और आख़िर में उन्हें एक ऐसे क़ैदख़ाने में डाल दिया जो दरअस्ल एक खण्डहर था; न उसमें छत थी न साएदार पेड़। ग़ौरतलब की बात ये है कि इन औरतों में कोई मुसलमानों के नबी हज़रत मुहम्मद(स.) की नवासी थी तो कोई बहू।

बहरहाल, जब इमाम हुसैन अपने ख़ानदान की औरतों से अलविदा कह चुके तो वो मैदाने जंग में आए। मगर जंग शुरू करने से पहले उन्होंने चाहा कि वो दुश्मन को झिंझोड़ें और उसे सुधरने का एक मौक़ा और दें। इस ख़ातिर उन्होंने दुश्मन की फ़ौज से पूछा, "मैं तुम्हें अल्लाह की क़सम देकर तुमसे पूछता हूँ कि क्या तुम मुझे पहचानते हो?" सबने एक आवाज़ में कहा, "हाँ, हम आपको पहचानते हैं। आप हज़रत मुहम्मद के नवासे और हज़रत अली के बेटे हैं।" ये सुनकर इमाम हुसैन ने उनसे सवाल किया, "फिर क्या तुमने हज़रत मुहम्मद से मेरे और मेरे भाई हसन के बारे में नहीं सुना था कि उन्होंने कहा थाः जो हसन व हुसैन से मोहब्बत करेगा मैं उससे मोहब्बत करूँगा। और जिससे मैं

मोहब्बत करूँगा उससे अल्लाह मोहब्बत करेगा। और क्या उन्होंने नहीं कहा था कि हसन और हुसैन इस दुनिया में मेरे दो फूल हैं इसलिये जो इन्सान ये चाहता है कि मुझसे मोहब्बत करे वो इन दोनों से ज़रूर मोहब्बत करे।"

उस वक़्त दुश्मन की फ़ौज ने इक़रार किया कि उन्होंने ये बातें हज़रत मुहम्मद से सुनी हैं। तब इमाम हुसैन ने उनसे सवाल किया "तो फिर तुम मुझे क्यों क़त्ल करना चाहते हो? क्या मैंने किस इस्लामी क़ानून को बदल दिया है? या फिर मैंने कोई गुनाह किया है? ये बताओ! क्या ये मुनासिब है कि इस रेगिस्तान के जानवर तो नहर से पानी पियें मगर अल्लाह के पैग़म्बर का नवासा प्यासा रहे?" इन सवालों का जवाब दुश्मन के पास नहीं था। दुश्मन की ख़ामोशी बताती है कि उसकी निगाह में इमाम हुसैन बेगुनाह थे। मगर क्या किया जाए कि जिन लोगों की आँखों पर परदे पड़े होते हैं और जिनके सर पर जुनून सवार होता है वो न तो हक़ देखते हैं न बातिल, न सच देखते हैं न झूठ।

इमाम हुसैन ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए सामने खड़ी फ़ौज से कहा, "तुम पर मेरी सच्ची बातें भी इस लिये असर नहीं कर रही हैं क्योंकि तुम्हारे पेट हराम से भरे हुए हैं और तुम पर शैतान हावी हो गया है।" तभी दुश्मन का एक आदमी बोल पड़ा, "आप यज़ीद की बैअत क्यों नहीं कर लेते?" ये सुनकर इमाम हुसैन गरज कर बोले, "नहीं, खुदा की क़सम नहीं, मैं ज़िल्लत के साथ अपना हाथ आगे नहीं बढ़ा सकता। मैं ज़लील लोगों की तरह जुल्म के सामने नहीं झुक सकता।"

जब इमाम हुसैन ने देखा कि दुश्मन उनकी कोई बात सुनने को तैयार नहीं तो उन्होंने फ़ौज के कमाण्डर से कहा कि मैं अकेला हूँ और तुम्हारी तरफ़ हज़ारों लोग। इसलिये इन्साफ़ तो यही होगा कि तुम एक के मुक़ाबले पर एक आदमी भेजो। दुश्मन के कमाण्डर ने इमाम हुसैन की ये सलाह मान ली। दुश्मन को लग रहा था कि इमाम हुसैन ज़्यादा देर तक जंग लड़ नहीं पाएंगे

क्योंकि वो तीन दिन के भूखे और प्यासे हैं। इसके अलावा उन्होंने सुबह से लेकर दोपहर तक शहीदों की लाशें उठाई हैं। मगर दुश्मन का ये ख़्याल तब ग़लत निकला जब इमाम हुसैन ने एक–एक करके दुश्मन के बहुत से लोगों को क़त्ल कर डाला। कोई भी उनके सामने ठहर नहीं पा रहा था। आख़िर में दुश्मन के कमाण्डर ने अपनी फ़ौज को ललकार कर कहा, "तुम खड़े क्या देख रहे हो? ये अली का बेटा है। अगर तुम इसके सामने एक–एक करके जाते रहोगे तो ये तुम सबको क़त्ल कर डालेगा। इसलिये आगे बढ़ो और सब मिलकर इस पर हमला कर दो।"

बहरहाल, दुश्मन ने उस दौर के जंगी क़ानून को तोड़ते हुए एक साथ इमाम हुसैन पर हमला कर दिया। मगर फिर भी इमाम हुसैन की बहादुरी का ये हाल था कि जिस तरफ़ वो अपना घोड़ा मोड़ देते थे उस तरफ़ की फ़ौजें भागने लगती थीं। यहाँ तक कि इमाम हुसैन फ़ौज की सफ़ों (पंक्तियों) को चीरते हुए नहर तक पहुँच गये। उन्होंने अपना घोड़ा पानी में डाल दिया। फिर झुककर एक चुल्लू पानी उठाया। दुश्मन को डर हुआ कि अगर हुसैन ने पानी पी लिया तो फिर उनका मुक़ाबला कोई न कर सकेगा। इसलिये उसने झूठ ही आवाज़ लगाकर हुसैन से कहा, "ऐ हुसैन! आप इधर पानी पीने जा रहे हैं और उधर हमारे कुछ लोगों ने आपके ख़ेमों पर हमला कर दिया है।" इमाम हुसैन ने जैसे ही ये बात सुनी फ़ौरन चुल्लू से पानी को फेंका और घोड़ा दौड़ाते हुए अपने ख़ेमों की तरफ़ गये। बात दरअस्ल ये थी कि इमाम हुसैन एक ग़ैरतदार इन्सान थे इसलिये उन्हें ये नहीं बर्दाश्त था कि उनके ज़िन्दा रहते कोई इन्सान उनके घर की औरतों की तरफ़ निगाह उठाकर देखे। मगर जब इमाम हुसैन अपने ख़ेमों के पास पहुँचे तो पता चला कि दुश्मन ने एक बार फिर धोखा किया है और उनको नहर से हटाने के लिये अफ़वाह उड़ाई है।

इमाम हुसैन ने उन ज़ालिमों के ख़िलाफ़ बहुत देर जंग लड़ी। यहाँ तक कि उनके 1950 लोगों को क़त्ल किया। आख़िर में जब

दुश्मन से कुछ न बन पड़ा तो उसने पत्थरों से इमाम हुसैन पर हमला कर दिया। लिखा है कि एक पत्थर उनके माथे पर आकर लगा जिससे उनके माथे से ख़ून बहने लगा। जब ख़ून आँखों में जाने लगा तो इमाम हुसैन ने अपने कुर्ते का दामन उठाकर अपनी आँख साफ़ करना चाही। इस दौरान दुश्मन को मौक़ा मिल गया और उसने उनके सीने का निशाना लेकर एक ऐसा तीर मारा जो सीधे उनके सीने पर जाकर लगा। तीर का लगना था कि ख़ून का एक फ़व्वारा फूट पड़ा। थोड़ी ही देर में इमाम हुसैन घोड़े पर डगमगाने लगे। फिर तो दुश्मन ने इतने तीन बरसाए कि उनका जिस्म तीरों से भर गया। आख़िर में वो घोड़े से गिर पड़े। जिस वक़्त वो घोड़े से गिरे उनका बदन ज़मीन पहुँचने के बजाए तीरों पर टिक गया। तभी काली आँधी चलने लगी और आसमान लाल हो गया। इमाम हुसैन ने ज़िन्दगी की उन आख़िरी घड़ियों में भी अल्लाह को याद रखा और उसका शुक्र अदा करने के लिये अपने जिस्म पर ज़ोर डाला ताकि उनका माथा ज़मीन तक पहुँच सके और वो अल्लाह का सजदा कर सकें।

जिस वक़्त इमाम हुसैन रेगिस्तान की जलती ज़मीन पर पड़े हुए ज़िन्दगी की आख़िरी साँसें ले रहे थे उस वक़्त भी दुश्मन में इतनी हिम्मत न थी कि वो उनके क़रीब जाए। तभी दुश्मन के कमाण्डर ने आवाज़ लगाकर अपनी फ़ौज वालों से पूछा, "तुममें कौन है जो आगे बढ़कर हुसैन के सर को तन से जुदा करे? जो ऐसा करेगा उसे ज़बरदस्त ईनाम दिया जाएगा।" ये सुनकर फ़ौज से दस लोग सामने आए और फिर उन्होंने मिलकर रहनुमाई के उस चिराग़ को हमेशा के लिये बुझा दिया। सलाम हो हमारा उस हुसैन पर जिसने ज़ुल्म के सामने न झुककर इन्सानियत की लाज रख ली।

इमाम हुसैन का सर काटने के बाद उसे नैज़े (भाले) पर बुलन्द किया गया। दूसरी तरफ़ उनका घोड़ा उनकी लाश के चारों तरफ़ चक्कर काटने लगा। दुश्मन के कमाण्डर ने फ़ौज से

कहा, "इस घोड़े को पकड़ लो! क्योंकि ये हज़रत मुहम्मद का घोड़ा है। हम इसे इज़्ज़त देंगे और इसे अपने पास रखेंगे।" दुश्मन की ये बात हमें सोचने पर मजबूर करती है कि वो कैसे लोग थे जिन्हें हज़रत मुहम्मद के घोड़े का तो इतना ख़्याल था मगर उन्होंने उनके नवासे का ज़रा भी ख़्याल नहीं था तभी तो उसने हुसैन को तड़पा–तड़पा कर भूखा–प्यासा शहीद कर डाला।

इमाम हुसैन की शहादत के बाद उनके ख़ेमों में आग लगा दी गई। उनके घर की औरतों के सर से चादर छीन ली गई और उनके पीठों पर कोड़े बरसाए गये। यही नहीं, उन औरतों को ऊँटों पर सवार करके कूफ़ा होते हुए शाम नामी शहर ले जाया गया। ये लगभग 1200 किलोमीटर का रेगिस्तानी रास्ता था। उन क़ैदियों को शाम इसलिये ले जाया गया क्योंकि वहाँ यज़ीद राज करता था और शाम उसकी राजधानी थी। शाम में भी उन क़ैदियों की मुसीबतें ख़त्म नहीं हुई। उन्हें एक खण्डहर में क़ैद कर दिया गया। लिखा है कि जब भी हुसैन की तीन साल की बच्ची अपने बाप को याद करके रोती थी तो उसे तमाचे और कोड़े मारे जाते थे। यहाँ तक कि उस बच्ची के सामने उसके बाप का कटा सर पेश किया जाता था। बहरहाल वो बच्ची इतनी सताई गई और इतनी भूखी–प्यासी रखी गई कि एक दिन वो उसी क़ैदख़ाने में अपने बाप को याद करते हुए मर गई। दुनिया में हर क़ैदी को मरने के बाद आज़ाद कर दिया जाता है मगर अफ़सोस कि हुसैन की बच्ची को मरने के बाद भी आज़ादी नहीं मिली। नतीजतन, उसके घर वालों ने उसकी क़ब्र क़ैदख़ाने में ही बना दी।

यहाँ ये बात बताने लायक़ है कि जब इमाम हुसैन की बहन, जिनका नाम ज़ैनब था, को शाम ले जाकर यज़ीद के दरबार में पेश किया गया तो उस वक़्त भी वो डरी नहीं। यज़ीद ने बहुत चाहा कि वो ऐसी बातें करे जिससे हुसैन के घर के लोग उससे रहम की भीख माँगें मगर भीख माँगना तो दूर इमाम हुसैन की बहन और बेटे ने यज़ीद को भरे दरबार में ज़लील कर दिया।

उन्होंने यज़ीद से कहा कि न तो हुसैन तेरे ज़ुल्म के सामने झुके थे न हम झुकेंगे। उनकी बातें सुनकर यज़ीद इतना बौखलाया कि उसके दिल की बात उसकी ज़बान पर आ गई। वो बोल पड़ा कि "इस्लाम तो (हज़रत) मुहम्मद के घराने का ढोंग है और सच तो ये है कि न तो कोई कुरआन आया था और न ही मुहम्मद, अल्लाह के नबी थे।" यज़ीद के ये जुमले बताते हैं कि वो हरगिज़ सच्चा मुसलमान नहीं था। क्योंकि अगर वो मुसलमान होता तो कुरआन और हज़रत मुहम्मद के बारे में ऐसी बात हरगिज़ नहीं कहता। यज़ीद तो बस इस्लाम का मुखौटा चेहरे पर लगाए हुए था।

दोस्तों! आज भी बहुत से ऐसे लोग हैं जो सिर्फ़ अपने चेहरे पर इस्लाम का मुखौटा लगाए हुए हैं और इस्लाम को बदनाम कर रहे हैं। मगर आज भी सच्चे और झूठे इस्लाम का पता लगाना कोई मुश्किल काम नहीं। क्योंकि 1400 साल पहले हुसैन ने अपनी कुरबानी इसी लिये तो दी थी कि सच और झूठ का पता चल सके। आज तो बस आप ये देखिये कि हुसैन किस तरफ़ हैं। जिस तरफ़ हुसैन होंगे वही सच्चा इस्लाम होगा।

करबला के बारे में पूछे जाने वाले कुछ सवालात और उनके जवाब

जीत किसकी हुई ?

अक्सर लोग करबला के बारे में सवाल करते हैं कि करबला में जीत किसकी हुई क्योंकि जंग में जीता तो वही माना जाता है जो दुश्मन के ज़्यादा से ज़्यादा आदमियों को क़त्ल करता है और उसके माल--दौलत पर क़ब्ज़ा कर लेता है। और अगर इस हिसाब से देखा जाए तो यज़ीद जीत गया था और हुसैन हार गये थे। क्योंकि यज़ीद ने न सिर्फ़ इमाम हुसैन को बल्कि उनके सारे साथियों को भी क़त्ल कर डाला था।

इस सवाल के जवाब में पहले तो हम ये बताना चाहेंगे कि हार और जीत ताल्लुक़ इस चीज़ से नहीं होता कि किस तरफ़ के कितने आदमी मारे गये। और न ही क़ातिल को हमेशा जीता हुआ माना जाता है। क्योंकि अगर ऐसा होता तो आज हम ये कह रहे होते कि हिन्दुस्तान की आज़ादी की लड़ाई में अंग्रेज़ जीत गये थे और हिन्दुस्तानी हार गये थे। वजह ये है कि अंग्रेज़ों ने हज़ारों की तादाद में हिन्दुस्तानियों को क़त्ल किया था जबकि हिन्दुस्तानियों ने शायद ही गिनती के कुछ अंग्रेज़ों को मारा होगा। मगर आज सारी दुनिया यहाँ तक कि इंग्लैण्ड में रहने वाले अंग्रेज़ भी ये मानते हैं कि हिन्दुस्तानी जीत गये थे और अंग्रेज़ हार गये थे।

और अगर ये कहा जाए कि जीत हमेशा क़ातिल की होती है तो हम आपसे ये पूछते हैं कि फिर हिटलर को जीता हुआ क्यों नहीं माना जाता जबकि उसने तो लाखों लोगों को क़त्ल किया था? और अगर हिटलर जीत गया था तो उसने ख़ुदकुशी क्यों कर ली थी?

बात दरअस्ल ये है कि जीत और हार का ताल्लुक़ मक़सद के हासिल करने से होता है न कि मार–काट करने से। यानी

जो इन्सान अपना मक़सद हासिल कर लेता है उसे जीता हुआ और जो अपना मक़सद हासिल नहीं कर पाता उसे हारा हुआ माना जाता है।

इसी बात को सामने रखकर आइये देखें कि इमाम हुसैन और यज़ीद के बीच कौन जीता और कौन हारा। यज़ीद का मक़सद था कि वो इमाम हुसैन से बैअत ले ले। यानी उन्हें अपने सामने झुकने पर मजबूर कर दे। जबकि इमाम हुसैन का मक़सद था कि वो यज़ीद की बैअत न करें। वो ये भी चाहते थे कि लोगों को अच्छाई की तरफ़ बुलाएं और उन्हें बुराई से रोकें।

अब करबला की कहानी गवाही देती है कि अपनी तमाम ताक़त का इस्तेमाल करने के बाद भी यज़ीद, हुसैन को झुका न सका और उनसे बैअत ले न सका। इस तरह वो अपने मक़सद में कामयाब न हुआ। जबकि दूसरी तरफ़ हुसैन ने बैअत न करके अपना मक़सद हासिल कर लिया। उन्होंने जो बात पहले दिन कही थी वो उसी पर आख़िरी साँस तक बाक़ी रहे। वो ख़न्जर के नीचे भी यही कह रहे थे कि मैं सर कटा सकता हूँ लेकिन सर झुका सकता नहीं।

ग़ौर से देखा जाए तो इमाम हुसैन ने कामयाबी को एक नया माना और मतलब दे दिया। उन्होंने सारी दुनिया को बताया कि अपना सब कुछ लुटाकर भी जीत हासिल की जा सकती है। हालाँकि उनसे पहले लोग यही समझते थे कि जो मर गया वो हार गया। मगर हुसैन ने बताया कि मर कर भी जंग जीती जा सकती है। उन्होंने साबित कर दिया कि शहीद हमेशा ज़िन्दा रहते हैं और उन्हें कभी मौत नहीं आती।

इमाम हुसैन के ज़िन्दा रहने का सुबूत ये है कि आज सारी दुनिया में उनका नाम लिया जाता है और हर तरफ़ उनकी याद मनाई जाती है। आज बड़ी से बड़ी हस्ती उनको अपना आदर्श मानती है। और अगर आप ग़ौर से देखें तो मोहर्रम के मौक़े पर जो जुलूस निकाले जाते हैं वो दरअस्ल हुसैन की जीत का एलान

कर रहे होते हैं। क्योंकि जुलूस हमेशा जीते हुए इन्सान के नाम पर निकाला जाता है न कि हारे हुए इन्सान के नाम पर।

इमाम हुसैन ने ऐसा क्या किंया जो सदियो बाद भी उनका नाम लिया जाता है?

हालाँकि इससे पहले कुछ हद तक हम इस सवाल का जवाब दे चुके हैं मगर अपनी बात के मज़ीद (अतिरिक्त) सुबूत के लिये हम कुछ बातें और कहना चाहेंगे।

यूँ तो दुनिया में बहुत से ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने जुल्म व ना–इन्साफ़ी के ख़िलाफ़ जंग लड़ी मगर इमाम हुसैन का अन्दाज़ सबसे निराला था। उन्होंने जुल्म के ख़िलाफ़ जंग लड़ने से पहले ज़ालिम को बेनक़ाब कर दिया और उसके हक़ीक़ी चेहरे को सबके सामने पेश कर दिया। उन्होंने सारी दुनिया को बताया कि कभी ऐसा भी हो सकता है कि झूठ, सच्चाई का और जुल्म, इस्लाम का लबादा ओढ़कर दुनिया के सामने आ जाए। इसलिये दुनिया वालों होशियार रहना! तुम हर मुसलमान को सच्चा मुसलमान मत समझ लेना।

इमाम हुसैन ने ज़ालिम को इस तरह बेनक़ाब किया कि वो नन्हें–नन्हें बच्चों और परदा करने वाली औरतों को अपने साथ करबला ले गये। उनके साथियों में बूढ़े और जवान दोनो थे। मगर जब दुश्मन ने उन पर हमला किया तो आँख बन्द करके सबको क़त्ल कर डाला। उसने ये भी नहीं देखा कि कौन बच्चा है और कौन बूढ़ा। हद तो तब हो गई जब दुश्मन ने इमाम हुसैन और उनके साथियों पर उस वक़्त तीर बरसाए जब जंग के दौरान वो लोग नमाज़ पढ़ रहे थे। दुश्मन इतना बेशर्म था कि उसने हज़रत मुहम्मद की नवासियों को बग़ैर चादर के गलियों और सड़कों पर घुमाया।

अब आप ही बताइये कि क्या ऐसा दुश्मन हज़रत मुहम्मद का मानने वाला मुसलमान हो सकता है? क्या एक मुसलमान नमाज़

पढ़ते हुए लोगों को शहीद कर सकता है? यक़ीनन आप का जवाब यही होगा कि एक सच्चा मुसलमान ऐसी नीच और गिरी हरकत नहीं कर सकता। हम भी यही कहते हैं कि जिन लोगों ने इमाम हुसैन और उनके साथियों को क़त्ल किया वो हरगिज़ मुसलमान नहीं हो सकते। इस तरह इमाम हुसैन ने दुश्मन को बेनक़ाब कर दिया और साबित कर दिया कि वो मुसलमान नहीं।

आज बहुत से लोग ये भी पूछते हैं कि अगर इमाम हुसैन को यज़ीद को टक्कर लेनी ही थी तो फिर वो अपने साथ अपनी बहनों, बेटियों और घर के नन्हें–नन्हें बच्चों को क्यों ले गये? लेकिन सच्चाई ये है कि हुसैन चाहते थे कि वो दुनिया को दिखा दें कि दुश्मन कितना बेरहम और ज़ालिम है। उसमें इन्सानियत भी नहीं पाई जाती।

इमाम हुसैन ने हमेशा के लिये दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया। उन्होंने सारी दुनिया को बता दिया कि ज़ालिम और आतंकी लोग कभी मुसलमान नहीं हो सकते चाहे वो कितना ही मुसलमान होने का ढोंग रचाएं। कुल मिलाकर, इमाम हुसैन ने साबित कर दिया कि जुल्म का कोई मज़हब नहीं होता।

इमाम हुसैन ही यज़ीद के ख़िलाफ़ क्यों खड़े हुए और लोग भी तो थे?

ये सवाल भी अक्सर पूछा जाता है कि इमाम हुसैन ही क्यों यज़ीद के ख़िलाफ़ खड़े हुए जबकि उस दौर में हज़रत मुहम्मद के बहुत से सहाबी (साथी) मौजूद थे? इसके अलावा कुछ ना–समझ लोग ये भी कहते हुए मिलते हैं कि इमाम हुसैन ने यज़ीद के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाकर ग़लती की। अगर वो ख़ामोश बैठ जाते तो उनकी जान भी बच जाती और ख़ून–ख़राबा भी न होता।

इस सवाल के जवाब में हम कहना चाहेंगे कि उस वक़्त इमाम हुसैन का खड़े होना न सिर्फ़ अच्छा था बल्कि ज़रूरी था। वजह ये है कि उस दौर में यज़ीद इस्लाम का चेहरा बिगाड़ कर पेश

करना चाह रहा था। और ये बात इमाम हुसैन हरगिज़ बर्दाश्त नहीं कर सकते थे कि उनके होते हुए इस्लाम को तोड़–मरोड़ कर पेश किया जाए।

इस बात को समझाने के लिये हम एक मिसाल पेश करना चाहेंगे। आप ने देखा होगा कि अलग–अलग कम्पनियों की बनाई हुई बहुत सी चीज़ें बाज़ार में बिक रही होती हैं। फिर अगर एक कम्पनी का माल बहुत बिकने लगता है तो ऐसे लोग भी पैदा हो जाते हैं जो उस कम्पनी के नाम पर नक़ली माल बनाकर बाज़ार में ले आते हैं। यहाँ तक कि उसी ब्राण्ड को इस्तेमाल करने लगते हैं। मगर जैसा कि कहा जाता है कि नक़ल हमेशा होती है पर बराबरी कभी नहीं। क्योंकि नक़ली माल हमेशा घटिया और बेकार होता है। अब ऐसे मौक़े पर जो कम्पनी असली माल बनाती है वो लोगों को ख़बरदार करती है कि वो नक़ली माल से होशियार रहें। वो अख़बार में छपवाती है कि कुछ लोग उसके ब्राण्ड का ग़लत इस्तेमाल कर रहे हैं इसलिये आप लोग धोखा न खाएं। बहरहाल, ऐसा करना उस कम्पनी के लिये न सिर्फ़ मुनासिब होता है बल्कि ज़रूरी होता है। ग़ौरतलब है कि ऐसा वही कम्पनी करती है जिसके नाम व ब्राण्ड को चोरी किया जा रहा होता है।

कुछ ऐसा ही हुआ था जब यज़ीद ने नक़ली इस्लाम को दुनिया वालों के सामने असली कहकर पेश किया था। यज़ीद का इस्लाम वही इस्लाम था जिसमें जुआ खेलना, शराब पीना, गाना बजाना और यहाँ तक कि बेगुनाहों को सरे आम क़त्ल करना जायज़ था। ज़ाहिर सी बात है कि ऐसे इस्लाम के बाज़ार में आने के बाद इमाम हुसैन कैसे चुप बैठ सकते थे? हाँ, अगर यज़ीद इस्लाम की जगह किसी और शब्द का इस्तेमाल करता तो इमाम हुसैन को कोई एतराज़ न होता। मगर बात दरअस्ल ये थी कि वो इस्लाम शब्द का इस्तेमाल कर रहा था।

इमाम हुसैन इसलिये ख़ामोश नहीं बैठ सकते थे क्योंकि वो

सच्चे इस्लाम के ज़िम्मेदार थे। वो हज़रत मुहम्मद के नवासे थे। इस्लाम उन्हीं के घर से फैला था। और कुरआन उन्हीं के घर उतरा था।

इमाम हुसैन हरगिज़ बर्दाश्त नहीं कर सकते थे कि उनके होते हुए इस्लाम का चेहरा बिगाड़ा जाए या फिर असली इस्लाम के नाम पर नक़ली इस्लाम लोगों के सामने पेश किया जाए। इसलिये ये सवाल ही बेकार है कि इमाम हुसैन, यज़ीद के ख़िलाफ़ क्यों उठ खड़े हुए। उनका तो कहना था कि "अगर सारी दुनिया में कोई यज़ीद के ख़िलाफ़ नहीं उठेगा तब भी मैं अकेला उसके ख़िलाफ़ उठ खड़ा होऊँगा।"

हम समझते हैं कि हमारी इस मिसाल से उन लोगों को जवाब मिल गया होगा जो नादानी का शिकार होकर कहते हैं कि इमाम हुसैन ने यज़ीद के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द करके ग़लत किया। उन्हें तो यज़ीद का हुक्म मान लेना चाहिये था। उनकी निगाह में इस्लाम कहता है कि हमें हर हाल में हाकिम का हुक्म मानना चाहिये। ऐसे लोगों को हम बस इतना बताना चाहेंगे कि जो इस्लाम हर हाल में हाकिम का हुक्म मानने की बात कहता है वो नक़ली इस्लाम है। क्योंकि असली इस्लाम तो सिर्फ़ उस हाकिम की हर बात मानने का हुक्म देता है जो आदिल और इन्साफ़–पसन्द हो। क्योंकि अगर इस्लाम हर क़िस्म के हाकिम के सामने झुकने को कह रहा होता तो फिर सोचने की बात ये है कि हज़रत इब्राहीम ने नमरूद की मुख़ालिफ़त क्यों की? और हज़रत मूसा ने फ़िरऔन को ललकारा क्यों? क्या इन दो नबियों को इस्लाम की ख़बर न थी?

शिया मुसलमान 1400 साल बाद इमाम हुसैन का ग़म क्यों मनाते हैं?

अक्सर सवाल होता है कि शिया मुसलमान 1400 साल पहले गुज़रे वाक़ेए (घटना) की याद आज क्यों मनाते हैं ? तो जवाब ये

है कि दुनिया के बहुत से वाक़ेए ऐसे हैं कि जिनकी याद हमेशा मनाई जाती रहेगी। क्योंकि उन वाक़िआत (घटनाओं) से हमें ऐसी सीख और पैग़ाम मिलते हैं जो कभी बासी और फीके नहीं होते। ये बात ठीक उसी तरह है जैसे कि आज से 500 साल पहले सभी स्कूलों और मदरसों में पढ़ाया जाता था कि दो और दो चार होते हैं या एक त्रिभुज के अन्दर के कोणों का योग 180^0 होता है। और आज भी ये बातें स्कूलों में पढ़ाई जाती हैं।

बात दरअस्ल ये है कि दुनिया में कुछ ऐसी सच्चाइयाँ हैं जो कभी पुरानी नहीं होतीं। हर आने वाली नस्ल उन्हें पढ़ती व सीखती है। और ऐसी ही सच्चाइयों में से एक सच्चाई "ज़ुल्म के सामने न झुकना और सच की ख़ातिर अपना सब कुछ कुर्बान कर देना" है। इमाम हुसैन[अ.] ने इसी सच्चाई की सीख करबला नामी तपते रेगिस्तान में दी थी।

ये बात मुसलमानों को और अच्छी तरह समझाने के लिये हम कुरआन की एक मिसाल देना चाहेंगे। हम उनसे पूछना चाहेंगे कि बक़रीद के दिन वो गुज़रे ज़माने के किस वाक़ेए की याद मनाते हैं? ज़ाहिर सी बात है कि हर मुसलमान कहेगा कि हम उस इम्तिहान की याद मनाते हैं जो मिना नामी वादी में हज़रत इब्राहीम[अ.] ने दिया था। वही इम्तिहान कि जिसमें अल्लाह ने इब्राहीम से कहा था कि वो अल्लाह की ख़ातिर अपने बेटे इस्माईल[अ.] को ज़िब्ह करें। फिर जब इब्राहीम ने अपने बेटे को ज़िब्ह करना चाहा तो अल्लाह ने इस्माईल की जगह एक भेड़ भेज दी। नतीजतन वो भेड़ ज़िब्ह हो गई और इस्माईल बच गये। अब सवाल ये है कि इमाम हुसैन[अ.] की करबला में शहादत का वाक़ेया ज़्यादा पुराना है या फिर हज़रत इब्राहीम[अ.] का मिना में इम्तिहान देने का वाक़ेया? ज़ाहिर सी बात है आपका जवाब यही होगा कि इब्राहीम[अ.] का वाक़ेया ज़्यादा पुराना है क्योंकि उसे तक़रीबन 4000 साल हो चुके हैं जबकि इमाम हुसैन[अ.] के वाक़ेए को सिर्फ़ 1400 साल गुज़रे हैं।

इसलिये इन्साफ़ से बताइये कि क्या ये सही होगा कि इब्राहीम(अ) के वाक़ेए की याद तो हर साल मनाई जाए मगर इमाम हुसैन(अ.) के वाक़ेए की याद न मनाई जाए? जबकि इब्राहीम(अ.) का वाक़ेया पुराना भी ज़्यादा है और उसमें तो सिर्फ़ एक भेड़ ज़िब्ह हुई थी जबकि करबला में हज़रत मुहम्मद का नवासा हुसैन(अ.) ज़िब्ह हो गया था।

बहरहाल, आज इमाम हुसैन की याद मनाकर दुनिया के तमाम लोगों को झिंझोड़ा जाता है और उन्हें ये पैग़ाम दिया जाता है कि वो जागते रहें और ज़ुल्म व बुराई के सामने न झुकें। और अगर वो सच्चाई व अहिंसा के रास्ते पर चले तो जीत उन्हीं की होगी।

शिया मुसलमान इमाम हुसैन की याद रोकर क्यों मनाते हैं?

कुछ लोग शिया मुसलमानों से सवाल करते हैं कि आप लोग शहीदों के ग़म में रोते क्यों हैं और सीना क्यों पीटते हैं? तो इसका जवाब ये है कि शहीदों का रुत्बा आम आदमी से बहुत बुलन्द होता है। आम आदमी अगर इन्सानियत के लिये कुछ करना चाहता है तो वो अपने इल्म या हुनर या वक़्त या माल–दौलत के ज़रिये इन्सानियत की ख़िदमत (सेवा) करता है मगर शहीद तो वो होता है जो इन्सानियत की ख़ातिर अपनी जान कुरबान कर देता है। आप ही सोचिये कि अगर शहीद अपना ख़ून देकर लोगों को आज़ादी और अम्न–चैन न दिलाये तो बड़े से बड़ा आलिम (विद्वान), कलाकार या वैज्ञानिक भी समाज के लिये कुछ न कर पायेगा। कुल मिलाकर कहा जाए तो शहीद उस चिराग़ की तरह होता है जो ख़ुद तो जल जाता है मगर दूसरों को उजाले दे जाता है। ताकि वो उस उजाले में समाज की ख़िदमत कर सकें।

हम शिया मुसलमान शहीदों पर इसलिये रोते हैं कि हमें अफ़सोस होता है कि जिन चिराग़ों से सारे इन्सानी समाज को

रौशनी मिल रही थी उन्हें बुझा दिया गया। रही बात सीना पीटकर ग़म मनाने की तो पुराने ज़माने से दुनिया की कई क़ौमों में इसका चलन रहा है। ये चीज़ ठीक उस तरह है जैसे कि दुनिया के कुछ हिस्सों में हाथ जोड़कर अभिवादन किया जाता है और कुछ हिस्सों में हाथ मिलाकर। बहरहाल, सर और सीना पीटना भी ग़म को ज़ाहिर करने का एक तरीक़ा है।

कुछ लोग ये भी पूछते हैं कि अगर इमाम हुसैन शहीद हुए थे तो उनकी याद ख़ुश होकर क्यों नहीं मनाई जाती क्योंकि शहादत तो एक बहुत बड़ा दर्जा होता है? और जो इन्सान बहुत बड़े दर्जे या मक़ाम को हासिल करता है उसकी याद ख़ुश होकर मनाई जानी चाहिये?

ये सवाल पहली निगाह में किसी हद तक सही लगता है मगर जब गहराई से सोचा जाता है तो पता चलता है कि इमाम हुसैन का मामला दूसरे तमाम शहीदों से अलग है। क्योंकि करबला में सिर्फ़ इमाम हुसैन ही शहीद नहीं हुए थे बल्कि उनके छः महीने के बच्चे को भी भूखा–प्यासा क़त्ल किया गया था। इसके अलावा उनकी बहनों को (जो हज़रत मुहम्मद की सगी नवासियाँ थीं) बाद में बग़ैर चादर के बाज़ारों में फिराया गया था और क़ैदी बनाया गया था। अब आप ही बताइये कि क्या इन चीज़ों की याद ख़ुश होकर मनाना मुनासिब होगा? सच तो ये है कि इन बातों को सुनकर दिल में एक ऐसी टीस उठती है कि इन्सान बेसाख़्ता (सहसा) अपने सर और सीने को पीटने लगता है। और इसी को मातम कहते हैं।

क्या इमाम हुसैन को शियों ने क़त्ल किया था?

ये सवाल तो इतना बेबुनियाद है कि हम इसका जवाब देना भी पसन्द नहीं करते। मगर क्या किया जाए कि कुछ लोग अपनी बे सर–पैर की बातों के ज़रिये शियों को बदनाम करना चाहते हैं। इसलिये हमने मुनासिब जाना कि इस सवाल का

जवाब भी यहाँ दे दें।

वो लोग कि जो शियों के बारे में ऐसी बातें कहते हैं उनसे हम पूछना चाहेंगे कि अगर शियों ने इमाम हुसैन[(अ.)] का क़त्ल किया होता तो वो आज इमाम हुसैन के क़ातिलों को बुरा–भला क्यों कह रहे होते और उन पर लानत क्यों कर रहे होते? क्योंकि क़ातिल कभी अपने ऊपर लानत नहीं करता।

बहरहाल, जो लोग शियों के बारे में ये अफ़वाह फैलाते हैं हम उनको दावत देते हैं कि आइये मिलकर इमाम हुसैन[(अ.)] के क़ातिलों पर लानत की जाए। ऐसा करने से ये साबित हो जाएगा कि इमाम हुसैन[(अ.)] का क़त्ल न तो हमारे पुरखों ने किया था और न आपके पुरखों ने। हमें उम्मीद है कि किसी मुसलमान को ऐसा करने में कोई एतराज़ न होगा ख़ासतौर पर ये जानते हुए कि इमाम हुसैन[(अ.)] अल्लाह के आख़िरी नबी हज़रत मुहम्मद[(स.)] के प्यारे नवासे थे।

इमाम हुसैन के बारे में हज़रत मुहम्मद की कही कुछ बातें

वैसे तो हज़रत मुहम्मद ने अपने दोनों नवासों (हसन व हुसैन) के बारे में सैकड़ों बातें कही थीं मगर हम यहाँ पर सिर्फ़ कुछ को पेश कर रहे हैं। ये बातें शिया और सुन्नी दोनों फ़िर्क़ों की किताबों में लिखी हुई हैं। इन बातों से आप आसानी से अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि हज़रत मुहम्मद की निगाह में दोनों नवासों का क्या मुक़ाम था।

1. यक़ीनन हसन और हुसैन इस दुनिया में मेरे दो फूल हैं। इस लिये जो इन्सान मुझसे मुहब्बत करता है उसे इन दोनों से भी मुहब्बत करनी चाहिये।
2. जो हसन और हुसैन से मुहब्बत करेगा मैं उससे मुहब्बत करूँगा। और जिस इन्सान से मैं मुहब्बत करूँगा उससे अल्लाह मुहब्बत करेगा और उसे जन्नत में दाख़िल करेगा।
3. जो इन्सान जन्नत के सरदार को देखना चाहता है उसे इस (हुसैन) की तरफ़ देखना चाहिये।
4. हसन व हुसैन मेरे बाद और अपने बाप के बाद दुनिया के सबसे अच्छे इन्सान हैं। और इन दोनों की माँ दुनिया की तमाम औरतों सबसे बेहतर हैं।
5. मेरे घर वालों में मुझे सबसे ज़्यादा मुहब्बत हसन व हुसैन से है।
6. मेरा ये नवासा इराक़ की एक ऐसी सरज़मीन पर क़त्ल किया जाएगा जिसका नाम करबला होगा। इसलिये जो इन्सान उस ज़माने को पाए उसके लिये ज़रूरी होगा कि वो हुसैन की मदद करे।
7. हुसैन को क़त्ल (शहीद) किया जाएगा। तो जो लोग उसे तन्हा छोड़ देंगे और उसकी मदद नहीं करेंगे अल्लाह भी क़यामत के दिन उन्हें अकेला छोड़ देगा और उनकी मदद नहीं करेगा।

इमाम हुसैन की कही कुछ बातें

1. लोग तो दुनिया के गुलाम हैं और दीन (धर्म) सिर्फ़ उनकी ज़बान पर है। वो दीन के साथ तब तक चलते हैं जब तक उनकी दुनिया सही चलती रहती है। लेकिन जब उनका इम्तिहान लिया जाता है तो बहुत कम लोग होते हैं जो दीन वाले साबित होते हैं।
2. सच्चाई इज़्ज़त है और झूठ बेइज़्ज़ती है।
3. जो इन्सान ये चाहता है कि उसकी ज़िन्दगी लम्बी हो और रोज़ी–रोटी ज़्यादा हो तो उसे ये चाहिये कि वो अपने ख़ूनी रिश्तेदारों के साथ अच्छे ताल्लुक़ात बनाए रखे।
4. ऐ लोगो! अल्लाह ने सिवाए इसके किसी और मक़सद के लिये बन्दों को नहीं बनाया कि वो अल्लाह को पहचानें। तो जब उसे पहचान लेंगे तो वो उसकी इबादत करेंगे। और जब वो उसकी इबादत करेंगे तो उन्हें किसी इन्सान की गुलामी की ज़रूरत नहीं रहेगी।
5. (लोगों!) एक दूसरे से मिलो–जुलो और एक दूसरे के साथ नेकी करो। क्योंकि खुदा की क़सम वो ज़माना आने वाला है जब तुम्हें ऐसा इन्सान नहीं मिल सकेगा कि जिसे तुम दिरहम या दीनार दे सको।
6. लोगों में कुछ ऐसे हैं जो अल्लाह की इबादत (जन्नत की) लालच में करते हैं। ऐसे लोगों की इबादत ताजिरों (व्यापारियों) की तरह होती हैं। और कुछ लोग ऐसे हैं जो अल्लाह की इबादत (जहन्नम के) डर से करते हैं ऐसे लोगों की इबादत गुलामों की तरह होती है। मगर कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अल्लाह की इबादत उसका शुक्र अदा करने के लिये करते हैं। ऐसे लोगों की इबादत आज़ाद लोगों की इबादत होती है। (क्योंकि वो हर क़िस्म के लालच और डर से दूर होते हैं)। ये वही इबादत है जो सबसे अच्छी इबादत है।

7. कलाम से पहले सलाम (यानी किसी से बात की शुरूआत करने से पहले सलाम किया करो)। जो इन्सान सलाम नहीं करता उससे बात मत किया करो।

8. गुज़री हुई किसी नेमत पर अल्लाह का शुक्र करना, आने वाली नेमत की वजह बनता है।

9. समझदार इन्सान उस आदमी से बात नहीं करता जिसके बारे में उसे डर होता है कि वो उसे झुठला देगा। और वो उस आदमी से कुछ नहीं माँगता जिसके बारे में उसे इन्कार का डर होता है। और वो उस इन्सान पर भरोसा नहीं करता जिससे उसे धोखे का डर होता है। और वो उस आदमी से उम्मीद भी नहीं लगाता जिसके ऊपर उसे इत्मिनान नहीं होता।

10. अगर इन्सान गुनाह करके किसी चीज़ को हासिल करता है तो वो चीज़ उससे कहीं पहले नाबूद हो जाती है कि जितनी वो उम्मीद करता है। और वो मुसीबत उसके पास उससे कहीं तेज़ी से आती है जिसका उसे डर लगा होता है।

इमाम हुसैन के बारे में दुनिया की महान हस्तियों ने क्या कहा

भारत के राष्ट्रपिता **महात्मा गाँधी** ने इमाम हुसैन के बारे में कहा था "मैं ने करबला की दर्दनाक कहानी उस उक़्त पढ़ी थी जब मैं नौजवान ही था। उसने मुझे हैरत व ताज्जुब में डाल दिया।" एक और जगह पर गाँधी जी ने कहा था "मैं ने हुसैन से सीखा है कि मज़लूम होते हुए भी जीत कैसे हासिल की जाती है।"

भारत के पहले राष्ट्रपति **डा0 राजेन्द्र प्रसाद** ने कहा था कि "इमाम हुसैन की कुरबानी एक देश या एक क़ौम तक सीमित नही है बल्कि ये तो नस्लों से चला आ रहा इन्सानी भाई–चारे का सन्देश है।"

भारत के पहले उप राष्ट्रपति **डा0 राधाकृष्णन** ने अपने सन्देश में कहा था "हालाँकि इमाम हुसैन ने अपना बलिदान वर्षों पहले दिया था मगर उनकी अविनाशी आत्मा आज भी लोगों के दिलों पर राज करती है।"

भारत के पहले प्रधान मन्त्री **पण्डित जवाहर लाल नेहरू** ने इमाम हुसैन के बारे में अपने विचार यूँ व्यक्त किये थे कि "इमाम हुसैन की कुरबानी सभी समुदायों और क़ौमों के लिये सच्चाई के रास्ते का एक उदाहरण है।"

उत्तर प्रदेश की पहली महिला राज्यपाल व प्रसिद्ध कवयित्री **डा0 सरोजनी नायडू** ने कहा था "मैं मुसलमानों को मुबारकबाद देना चाहती हूँ कि जिनके बीच हुसैन जैसा महान व्यक्ति पैदा हुआ

जिसका आदर सत्कार दुनिया के सभी समुदाय करते हैं।"

मशहूर ब्रिटिश इतिहासकार, कई किताबों के लेखक एवं अंग्रेज़ी संसद के सदस्य रह चुके **एडवर्ड गिबन** अपनी किताब 'दि डिक्लाइन एण्ड फ़ाल ऑफ़ दि रोमन एम्पायर' की जिल्द 5 पेज न. 391 पर लिखते हैं कि "हुसैन के जान देने की दर्द भरी कहानी आने वाले ज़मानों में भी ठण्डे से ठण्डे पढ़ने वालों में हमदर्दी जगाती रहेंगी।"

स्कॉटलैण्ड के प्रसिद्ध इतिहासकार और निबन्ध लेखक **थॉमस कारलाइल** ने लिखा है कि "सबसे बड़ी सीख जो हम करबला की दुख भरी कहानी से ले सकते है वो ये कि हुसैन और उनके साथी ख़ुदा में अटूट विश्वास रखते थे। उन्होंने ये दिखा दिया कि जब सच और झूठ की बारी आती है तो फिर इन्सानों का तादाद में ज़्यादा होना कोई माना नहीं रखता। तादाद में कम होने के बावजूद हुसैन की जीत मुझे अचरज में डाल देती है।"

मशहूर अंग्रेज़ उपन्यासकार **चार्ल्स डिकेन्स** ने कहा था "अगर हुसैन अपनी दुनियावी ख़्वाहिशों को पूरा करने के लिये लड़े थे ... तो मेरी समझ में नहीं आता कि उनकी बहन, बीवी और बच्चे उनके साथ क्यों गये थे? इसलिये जो बात अक़्ल में आती है वो ये कि हुसैन की कुरबानी सिर्फ़ और सिर्फ़ इस्लाम के लिये थी।"

कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी में प्रोफ़ेसर रहे **एडवर्ड जी. ब्राउन** ने अपनी किताब 'ए लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ़ पर्शिया के पेज न. 227 पर लिखा है कि "उस करबला की ख़ून से रंगीन ज़मीन की याद, जहाँ ख़ुदा के पैग़म्बर का नवासा प्यास से तड़पकर अपने ख़ानदान वालों की लाशों के बीच गिरा था, तब से लेकर कभी भी, ठण्डे से ठण्डे हौसलों और टूटी से टूटी हिम्मतों में जोश और वलवला

जगाने के लिये काफ़ी होगी। (करबला) रूह की ऐसी बलन्दी का नाम है जिसके सामने दर्द, ख़तरा और यहाँ तक कि मौत भी बेहद बौनी नज़र आती है।''

लेबनान के मशहूर ईसाई विद्वान **ऐन्टोइन बारा** ने लिखा है कि "आधुनिक और पूर्व कालीन इतिहास की किसी घटना ने इन्सानियत की उतनी हमदर्दी और प्रशंसा हासिल नही की और न उतने पाठ सिखाए जितनी कि इमाम हुसैन की करबला में शहादत की घटना ने।''

हंगेरी के रहने वाले पूर्वी धर्मों के प्रसिद्ध जानकार **इग्नाज़ गोल्डज़ीहर** ने अपनी किताब 'इन्ट्रोडक्शन टू इस्लामिक थियोलाजी एण्ड लॉ' के पेज न. 179 पर लिखा है कि "अली के ख़ानदान वालों पर जो ज़ुल्म व सितम हुआ उस पर रोना और ग़म मनाना और उनकी शहादत पर मातम करना, ऐसी चीज़ें हैं जिसे उनके मक़सद के वफ़ादार हामी कभी रोक न सकेंगे।''

प्रसिद्ध कवि और भारत के राष्ट्रीय गान रचयिता **रविन्द्र नाथ टैगोर** ने लिखा है कि "हुसैन का बलिदान आत्मा की मुक्ति का प्रतीक है। सच्चाई और इन्साफ़ को ज़िन्दा रखने के लिये किसी लश्कर या हथियार के बजाए जानों की कुरबानी देकर जीत हासिल की जा सकती है। और ये वही काम था जो इमाम हुसैन ने अन्जाम दिया।''

इन्सान को बेदार तो हो लेने दो
हर क़ौम पुकारेगी हमारे हैं हुसैन

इमाम हुसैन की ज़िन्दगी से मिलने वाली सीख

- हमें किसी भी हालत में जुल्म और ना–इन्साफ़ी के सामने नहीं झुकना चाहिये।
- सच की राह में साथी कितने भी कम हों परवाह नहीं करनी चाहिये।
- इन्साफ़ की ख़ातिर बड़ी से बड़ी कुरबानी देते हुए घबराना नहीं चाहिये।
- हमें हर हाल में ग़रीबों, मज़लूमों और दबे–कुचलों का साथ देना चाहिये।
- इमाम हुसैन ने दुनिया को पहली बार बताया कि "लड़ाई, मर कर भी जीती जा सकती है।"

इमाम हुसैन(अ.) की शान में कहे ग़ैर मुस्लिम शायरों के कुछ शेर

है आज भी ज़माने में चर्चा हुसैन का
चलता है कायनात में सिक्का हुसैन का

भारत में गर वो आते भगवान कहते हम
हर हिन्दू नाम पूजा में जपता हुसैन का

इसमें नहीं कलाम कि हम बुतपरस्त हैं
आँखों से अपनी चूमेंगे रौज़ा हुसैन का

हम पापियों के सामने हुर की मिसाल है
चमकाता है नसीब इशारा हुसैन का

सर अपना पीटती हैं, ये प्यासों की याद में
लेती हैं नाम गंगाओ जमना हुसैन का

जय सिंह पनाह माँगेगी मुझसे नरक की आग
मैं हिन्दू हूँ मगर हूँ मैं शैदा हुसैन का

(मशहूर हिन्दू कवि जय सिंह)

ज़िन्दा इस्लाम को किया तूने
हक़्क़ो बातिल दिखा दिया तूने
जी के मरना तो सबको आता था
मरके जीना सिखा दिया तूने

(मशहूर सिक्ख शायर कुँवर महिन्दर सिंद बेदी)

आँख में उनकी जगह, दिल में मकाँ शब्बीर का
ये ज़मीं शब्बीर की, ये आसमाँ शब्बीर का
जब से आने को कहा था, करबला से हिन्द में
हो गया उस रोज़ से हिन्दोस्ताँ शब्बीर का

(मशहूर हिन्दू कवि माथुर लखनवी)

नोट : इस किताब के पहले एडीशन को बहुत से लोगों ने अच्छाई के सन्देश को चारों तरफ़ फैलाने की ख़ातिर या फिर सवाब के लिये हम से ख़रीद कर आम लोगों में बाँटा। आप भी बहुत रिआयती क़ीमत पर इसे हमसे हासिल कर सकते हैं।

इस किताब को पढ़ने से आपकी ज़िन्दगी संवर जाएगी

इस किताब को पढ़ियेगा ज़रूर क्योंकि ये किताब आपको ऐसी सच्ची कहानी से आगाह करेगी जिससे आपकी ज़िन्दगी बदल जाएगी। आपके अन्दर ज़ुल्म और बेरहमी के ख़िलाफ़ लड़ने का जज़्बा पैदा होगा। आप में बहादुरी का जोश और वलवला भर जाएगा। आपको सच की राह पर चलने की प्रेरणा मिलेगी। आप में सब्र करने की सलाहियत पैदा होगी। और आप इन्सानियत के ख़ातिर अपना सब कुछ बलिदान करने के लिये तैयार हो जाएंगे।

ये गुज़रे ज़माने की वही कहानी है जिसे अब्राहम लिंकन ने पढ़ा, जिसे महात्मा गाँधी ने अपना आदर्श बनाया, जिसका अध्ययन रवीन्द्र नाथ टैगोर ने किया और जिससे डा० राजेन्द्र प्रसाद ने सीख ली।

ये हुसैन की कहानी है जो दिलों पर राज करते हैं।

नोटः इस किताब में बहुत से पवित्र नाम लिखे हैं इसलिये इसे इधर–उधर मत फेंकिये।

IMAMIA YOUTH ORGANIZATION
5, 1st Floor, City Centre, Medical Road, Aligarh
Website : www.imamiayouth.in
Email : imamia_youth@yahoo.com
Phone : 08439756816, 09336100559